श्रीगयामाहात्म्यम् ।

मूल और अनुवाद ।

कलकत्ता ।

३८।२ नं० भवानीचरण दत्त ष्ट्रीट, बङ्गवासी ष्टीम-मेशिन प्रेसमें

श्रीअरुणोदय राय द्वारा

मुद्रित और प्रकाशित ।

नवेम्बर, सन १९०२ ई० ।

मूल्य ॥)

श्रीगयामाहात्म्यम्।

प्रथमोऽध्यायः।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्। सकलकरणहीनं सर्व्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्व्वगं वन्द एकम्॥ १॥ नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपं। देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्म्मभिः सदा॥ २॥ सूतं पौराणिकं शान्तं सर्व्वशास्त्रविशारदम्। विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमा-

---

नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती और व्यासको नमस्कार करके जयपाठ (अर्थात् पुराणादिक) उच्चारण करे। १। मैं एकमात्र उन हरिकी वन्दना करता हूं, जो जन्म-रहित, जरावस्था-रहित, अन्तहीन, ज्ञानस्वरूप, महान्, शिवस्वरूप, निर्म्मल, पञ्चभूतसम्बन्धि देहादिविहीन, सर्वेन्द्रियादि-करणविहीन, सर्व्वभूतव्यापी, मलवर्जित, मायाविरहित हैं। २। मन, वचन, कर्म्मसे मैं सदा हरि, रुद्र, ब्रह्मा, गणेश और

गतम् ॥ ३ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन उपविष्टं शुभासने। ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्चास्तुवन् कविम् ॥ ४ ॥ शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्तपोधनाः। मुनयो रविसङ्काशाः शान्ता यज्ञपरायणाः ॥५॥ ऋषय ऊचुः। सूत जानासि सर्व्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयं। ब्रूहि तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्व्वतारकं। यत् श्रुत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥ सूत उवाच। अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमं। यत् श्रुत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥ सनकाद्यैर्महा-

---

देवी सरस्वतीको नमस्कार करूंगा। ३। पुराणवेत्ता, शान्त-चरित, सर्व्वशास्त्रविशारद, विष्णुभक्त महात्मा तीर्थयात्रा-प्रसङ्गवशतः नमिषारण्यको आये हुए, शुभासनपर बैठे हुए, विष्णुको ध्यान करते हुए, पापरहित, कवि सूतको भली भांति पूजके और अभिनन्दन करके नैमिषारण्यके रहनेवाले महा-भाग तपोधन सूर्य्यकी भांति तेजस्वी, शान्तचरित, यज्ञपरायण, शौनक आदि मुनि बोले। ४—५। ऋषिलोग बोले,—हे सूत! तुम सब जानते हो, इसीलिये तुमसे हम लोग पूछते हैं, जो पवित्रतीर्थ श्राद्धादिमें सबका तारक हो, जिसको सुनके सर्व्व-पापोंसे छूट जावें,—इसमें सन्देह नहीं; ऐसे तीर्थको कहो। ६। सूत बोले,—इसके पश्चात् मैं अत्युत्तम गयामाहात्म्य कीर्त्तन करता हूं। इसको सुनके समस्त पापोंसे छुटकारा मिलता है, सन्देह नहीं है। ७। एकबार देवर्षि नारद

भागर्दैवर्षिः सह नारदः। सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्व्वकं ॥ ८ ॥ नारद उवाच। सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमं। तारकं सर्व्वभूतानां शृखतां पठतां सदा ॥ ९ ॥ सनत्कुमार उवाच। वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्व्वतारकं। गयातीर्थमृषिश्रेष्ठ! तीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्व्विधा ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञानेन किं कार्य्यं गोग्रहे मरणेन किं। किं कुरुक्षेत्रवासेन यदि पुत्रो गयां व्रजेत् ॥ १२ ॥ महाकल्पकृतं पापं

महाभाग सनकादि ऋषियोंके साथ मिलकर सनत्कुमारके पास जाकर और उनको यथाविधि प्रणाम करके पूछने लगे। ८। नारद बोले,—हे सनत्कुमार! जो तीर्थ सब तीर्थोंकी अपेक्षा उत्तमोत्तम है, जिसके विषयमें सर्व्वदा सुनने अथवा पढ़नेसे जीवोंको परित्राण मिलता है, वह मुझसे कहिये। ९। सनत्कुमार बोले, हे ऋषिप्रवर! जो पुण्यतम तीर्थराज श्राद्धादि विषयोंमें सबका उद्धार करनेवाला है, सो कहता हूं, सुनो। १०। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोग्रह अर्थात् व्रजमें मरण और कुरुक्षेत्रमें वास—ये पुरुषोंके लिये मुक्तिके कारण कहे जाते हैं। ११। यदि पुत्र गयाको जावे, तो ब्रह्मज्ञानका क्या प्रयोजन है, व्रजमें मरनेसे ही क्या है, और कुरुक्षेत्रमें वसने होकी क्या आवश्यकता है? १२। गया·

गयां प्राप्य विनश्यति। पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥ १३ ॥ गयायां पिण्डदानेन यत् फलं लभते नरः। न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ १४ ॥ गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मा तत्र जगाम वै। छलेन पातयित्वोर्व्यां शिलां तन्मूर्द्ध्न्यधारयत् ॥ १५ तत्र ब्रह्माकरोद्यागं स्थापयित्वा गदाधरं ॥ फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशं ॥ १६ ॥ गयाशिरसि विप्रेन्द्र! ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह। कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकं। १७ ॥ श्वेतकल्पे तु वाराहे

क्षेत्रमें जाकर पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करते हुए तिलके अतिरिक्त अपना पिण्डदान करनेसे एक महाकल्प भरका किया हुआ पाप दूर हो जाता है।१३। गयातीर्थमें पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, मैं सौ करोड़ कल्पमें भी उसका वर्णन करके शेष करनेमें समर्थ नहीं हूं। १४। जिस समय गयासुरने तपस्या की थी, तब ब्रह्माने वहां जाकर कपटके सहारे उसे भूतलमें गिराकर उसके माथेमें शिला संस्थापन की थी।१५। ब्रह्मा उस असुरको दिन रात निश्चल रखनेके लिये फल्गुतीर्थ प्रभृतिके रूपसे उसी स्थानमें गदाधर देवको स्थापन करते हुए एक यज्ञ करने लगे।१६। हे विप्रेन्द्र! ब्रह्माने इस प्रकार देवगणका साथ देकर असुरके शिरमें यज्ञसम्पादनपूर्वक ब्राह्मणोंको गृहादि दिये अर्थात् वहां गयावाल ब्राह्मणोंको बसाया।१७। पहले

गयो यागमकारयत्। गयनाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकांक्षितम् ॥१८॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेद्वा चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १९ ॥ कांक्षन्ति पितरः पुत्रान् नरकाद्भयभीरवः। गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ २० ॥ गयां प्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत्। पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किन्न दास्यति ॥ २१ ॥ गयां गत्वान्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः। पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलं ॥ २२ ॥ नो

श्वेत वाराहकल्पमें गयनामक भूपतिने इसी स्थानमें यज्ञसम्पादन किया था, उन्हीके नामानुसार ही यह ब्रह्माभिकांक्षित क्षेत्र "गया" नामसे प्रसिद्ध हुआ है। १८। यदि एक भी गयामें जावे अथवा अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करे अथवा नील वृषभका उत्सर्ग करे,—इसी आशासे लोग बहुत पुत्रोंकी कामना किया करते हैं। पितृगण नरकके भयसे भीत रहते हुए इसीलिये बहुतसे पुत्रोंकी कामना करते हैं, कि जो पुत्र गयाजीको जावेगा, सोही हमारा रखवाला है। १९—२०। पुत्रको गयाजीमें आया हुए देखनेपर उसी दिन पितरोंके आनन्दोत्सव होता है, कि यह पुत्र गया जीमें उपस्थित होकर पांवसे जल छूता हुआ भी क्या हमको नहीं देगा? २१ जो पुत्र गयामे पिण्डदान करता है, पितर लोग उसीके द्वारा

चेत् पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रं त्रिरात्रकं । महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति ॥ २३ ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वङ्गनागमः । पापं तत्सङ्गजं सर्व्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥ २४ ॥ आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाश्राडे यदा तदा । यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तं येत् ब्रह्म सनातनं ॥ २५ । सकृद्गयाभिगमनं सकृत् पिण्डप्रपातनं । दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितिः ॥ २६ ॥ प्रमादान्म्रियते चेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्ति-

---

पुत्रवान् होते हैं। वहां तीन पक्ष वास करनेसे सप्तम कुलतकको पवित्र करता है। २२। तीन पक्ष वासकी सामर्थ्य न होनेसे पन्द्रह दिन, सात रात अथवा तीन रात वास करनेसे भी महाकल्पकृत पाप विनाशको प्राप्त होता है। २३। गयाश्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन प्रभृतिसे उत्पन्न और इन सबके संसर्गसे उत्पन्न पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। २४। गयाक्षेत्रमें जाकर चाहे जिस समय रौरसजात पुत्र अथवा अन्य चाहे जिस व्यक्तिका पुत्र जिसका नाम लेकर पिण्डदान करे, वह व्यक्ति तत्क्षण ही सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। २५। नित्य वासकी बात दूर रहे, एकबार मात्र गयाजीमें जाना और वहां एकबार मात्र भी पिण्ड पारना दुर्लभ है।२६। ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होनेसे जैसे मुक्ति मिलती है, ब्रह्मादि देवगणद्वारा कथित इसी मुक्तिप्रद गया

द्रायते। ब्रह्मज्ञानाद् यथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः॥ २७॥ कीकटादिमृतानाञ्च पितॄणां मुक्तिदायकं। तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन वस्तव्यञ्च विचक्षणैः॥ २८॥ ब्रह्म-प्रकल्पितान्विप्रान् हव्यकव्यादिनार्च्चयेत्। तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्व्वाः पितृभिः सह देवताः॥ २९॥ गयायां सर्व्वकालेषु पिण्डं दद्याद् विचक्षणः। अधिवासे जन्म-दिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः। न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि वृहस्पतौ॥ ३०॥ तथा दैवप्रमादेन प्रवहत्सु व्रणेषु च। पुत्रः कर्म्माधिकारी च श्राद्धकृत् ब्रह्मलोकभाक्॥ ३१॥ मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्व्वतीर्थ-

---

क्षेत्रमें प्रमादसे मरकर भी उसी भांति मुक्ति मलती है, सन्देह नहीं है। २७। यह क्षेत्र कीकट आदि देशोंमें मरे पितरोंके पक्षमें भी मुक्तिप्रद है, इसीलिये विचक्षण लोग सर्व्वदाही यत्नपूर्व्वक इसी स्थानमें वास करें। २८। ब्रह्माद्वारा प्रकल्पित ब्राह्मणोंको हव्य कव्य आदि द्वारा पूजे, क्योंकि उनके परितुष्ट होनेसे अखिल देवता और पितृगण परितृप्त हुआ करते हैं। २९। चतुर पुरुष सर्व्व समय हीमें गयाक्षेत्रमें पिण्डदान करें। अधिकमास, जन्मदिन, गुरु शुक्रका अस्तकाल और वृहस्पतिके सिंहस्थ होनेपर भी इन समयोंमें गयाश्राद्ध परित्याज्य नहीं है। ३०। दैवप्रमादसे अथवा व्रणादियोंके वहनेपर भी गयाक्षेत्रमें पवित्र होकर

ष्वयं विधिः। वर्ज्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयां॥ ३२॥ दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः। दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते॥ ३३॥ न दण्डी किल्बिषं धत्ते पुण्यं वा परमार्थतः। अतः सर्व्वां क्रियां त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुकः। सन्न्यसेत् सर्व्वकर्म्माणि वेदमेकं न सन्न्यसेत्॥ ३४॥ मुण्डपृष्ठाच्च पूर्व्वेऽस्मिन् पश्चिमे दक्षिणोत्तरे। सार्द्धक्रोशद्वयं मानं गयेति ब्रह्मणेरितं॥ ३५॥ पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोश-मेकं गयाशिरः। तन्मध्ये सर्व्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि

कर्म्मका अधिकारी होता है; और उस अवस्थामें गयाश्राद्ध करके वह व्यक्ति ब्रह्मलोकभागी हुआ करता है। ३१। सभी तीर्थों हीमें जानेसे शिर मुंडाने और उपवास करनेकी विधि है, पर कुरुक्षेत्र, विरजा, विशाला और गयामें वह नियम नहीं है। ३२। भिक्षु अर्थात् सर्व्वत्यागी संन्यासी गयामें जाकर पिण्डदान न करें, केवलमात्र दण्ड दिखावे। ये लोग विष्णुपदमें दण्ड स्पर्श करके ही पितृगणके साथ मुक्ति लाभ किया करते हैं। ३३। दण्डी लोग परमार्थ दृष्टिसे पुण्य पाप कुछ भी धारण नहीं करते, वे लोग सर्व्व कर्म्म विसर्ज्जनपूर्व्वक केवल मात्र विष्णु-की चिन्ता हीमें निमग्न रहते हैं। वे सर्व्व कर्म्म ही परित्याग करें, किन्तु एक मात्र वेद न त्यागें। ३४। ब्रह्माने स्वयं कहा है, कि मुण्डपृष्ठसे पूर्व्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ढाई ढाई कोस प्रमाण स्थान हीको गया कहते हैं। ३५। इस पञ्चक्रोश परि-

न्ति वै ॥ ३६ ॥ श्राद्धकृद् यो गयाक्षेत्रे पितृणामनृणो हि सः। शिरसि श्राद्धकृद् यः स कुलानां शतमुद्धरेत् ॥ ३७ ॥ गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति। स्वर्गारोहणसोपानं पितृणाञ्च पदे पदे ॥ ३८ ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य यत् फलं गच्छतो गयां। तत् फलञ्च भवेन्नृणां समग्रं नात्र संशयः ॥ ३९ ॥ पायसेनापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा। तण्डुलैः फलमूलाद्यैर्गयायां पिण्डपातनं ॥ ४० ॥ तिलाज्य-दधिमध्वादि पिण्डद्रव्येषु योजयेत्। मुष्टिमात्रप्रमाणेन चार्द्रामलकमात्रतः। शमीपत्र-प्रमाणेन पिण्डं दद्याद्

नित गयाक्षेत्रमें गयाशिरका परिमाण एक कोस है। उसके बीचमें त्रिलोकस्थित सभी तीर्थ विराजित हैं। ३६। गयाक्षेत्रमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष पितरोंके ऋणसे छूट जाता है और जो गयाशिरमें श्राद्ध करता है, सो सौ कुलका उद्धार करता है। ३७। गयागमनके उद्देश्यसे यात्रा करनेसे तत्क्षण ही पदपदमें पितरोंके लिये स्वर्गपर चढ़नेकी सीढ़ी बनती जाती है। ३८। अश्वमेधका अनुष्ठान करनेसे जो फल होता है, गया जीमें यात्रा करनेसे प्रति पदमें सम्पूर्णरूपसे वही फल प्राप्त होता है, सन्देह नहीं है। ३९। पायस, चरु, सक्तू, पिष्टक, तण्डुल अथवा फल मूलादि वस्तुओंसे गयामें पिण्ड पारे। ४०। पिण्डके द्रव्यमें तिल, घी, दधि, मधु आदि मिलावे।

गयाशिरे ॥ ४१ ॥ उद्धरेत् सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतं। माता पिता च भार्य्या च भगिनी दुहितुः पतिः। पितृष्वसा मातृष्वसा सप्तगोत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ४२ ॥-विंशतिर्व्विंशति-र्मातो-रष्टेन्द्राः षोड़शक्रमात्। एकादश द्वादशाथ कुलान्येकोत्तरं शतं ॥ ४३ ॥ तिलकल्केन खण्डेन गुड़ेन सघृतेन वा। केवलेनैव दध्ना वा ऊर्जेन मधुनापि वा ॥४४॥ पिण्याकं सघृतं खण्डं पितृभ्योऽच्चय्यमित्युत। द्रव्यते पितृभिर्मोच्यं हविष्यान्नं

एक मुट्ठी भर अथवा बिना सूखे आमले भर अथवा शमीपत्र भर पिण्ड बनाकर गयाके शिरमें दान करें। ४१। इस प्रकार पिण्डदान करनेसे सात गोत्र और एक सौ एक कुल उद्धार पाते हैं। माता, पिता, श्वशुर, बहिन, जमाई, बूआ और मौसी—इनका नाम सात गोत्र है। ४२। माताके गोत्रमें बीस, पिताके गोत्रमें बीस, श्वशुरके गोत्रमें आठ, बहिनके गोत्रमें चौदह, जामाताके गोत्रमें सोलह, बूआके गोत्रमें ग्यारह और मौसीके गोत्रमें बारह——ये सब एक सौ एक कुल कहलाते हैं। पूर्वोक्त पुरुष इन एक सौ एक कुलका उद्धार करते हैं। ४३। पहले कहे हुए द्रव्य यदि न मिलें, तो घी, दही, दूध, अथवा मधुमिश्रित तिलका कल्क, खांड़ अथवा गुड़द्वारा पिण्डदान करे। ४४। इन सब वस्तुओंसे पिण्ड पारनेसे पितरोंको अच्चय तृप्ति मिलती हैं। पितर लोग ऋषियोंकी कही हुई इन वस्तुओंकी वासना किया करते

मुनीरितं ॥ ४५ ॥ एकतः सर्व्ववस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि। स्मृत्वा गदाधराङ्घ्रयब्जं फल्गुतीर्थाम्बु चैकतः ॥ ४६ ॥ पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनं। दक्षिणा चान्नसंकल्पास्तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ॥ ४७ ॥ नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भवः। सकारुण्येन कर्त्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥ ४८ ॥ अन्यत्रावाहिताः काले पितरो यान्त्यमुं प्रति। तीर्थे सदा वसन्त्येते तस्मादावाहनं न हि ॥ ४९ ॥ तीर्थश्राद्धं प्रयच्छद्भिः पुरुषैः फलकांक्षिभिः। कामं क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा कार्य्या क्रियाभिधम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मचार्य्येकभोजी च भूशायी

हैं। पहले कही हुई घी प्रभृति द्रव्यका अभाव होनेपर केवल मात्र रसोंसे भरे हुए मधुद्वारा ही पिण्ड देवे। यदि मधु भी न हो, तो गदाधरके चरणकमलका स्मरण करता हुआ केवलमात्र फल्गु तीर्थका जल देनेसे भी गयाका श्राद्ध सुसम्पन्न होता है। ४६। पिण्डासन, पिण्डदान, प्रत्यवनेजन, दक्षिणा और अन्नसङ्कल्प,—ये कर्म्म करना ही तीर्थश्राद्धकी विधि है। ४७। इस स्थानमें आवाहन नहीं है, दिग्बन्धन नहीं, हीन जातिकी दृष्टिका दोष नहीं है। ४८। और स्थानोंमें आवाहन करनेसे पितर आते हैं, पर इस तीर्थमें पितर लोग सदा ही विराजते हैं, इसलिये आवाहन करनेकी आवश्यकता नहीं। ४९। फलकी कामना करनेवाले तीर्थश्राद्धके अनुष्ठान समयमें काम

सत्यवाक् शुचिः। सर्व्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते॥ ५१॥ तीर्थान्यनुसरन् धीरः पाषण्डं पूर्व्वतस्त्यजेत्। पाषण्डं तच्च विज्ञेयं यद्भवेत् कर्म्मवारकं॥ ५२॥ तीर्थेषु ये नरा धीराः कर्म्म कुर्व्वन्ति तद्गताः। यथा ब्रह्मविदो वेद्यं वस्तु चानन्यचेतसः। प्रविशन्ति परे साङ्ग्रं ब्रह्म ब्रह्मपरायणाः॥ ५३॥ मीने मेषे स्थिते सूर्य्ये कन्यायां कार्मुके घटे। मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः। दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनं ५४॥ गयायां न हि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।

क्रोध लोभको त्यागके कार्य्य सम्पन्न करें।५०। तीर्थमें ब्रह्मचर्य्यपरायण, एकाहारी, भूमिशायी, सत्यवादी और सर्व्वप्राणियोंके हितमें रत रहनेसे तीर्थका फल मिला करता है।५१। बुद्धिमान व्यक्ति तीर्थयात्राके पहले हीसे पाषण्डता छोड़ दें। शास्त्रोक्त कर्म्ममें विघ्न करनेवाले कार्य्योंहीको पाषण्डता कहते हैं।५२। सुबुद्धिमान् लोग तीर्थमे जाकर वेदज्ञ पुरुषके परब्रह्मचिन्तनकी भांति एकाग्रमनसे तद्गतचित्त होकर तीर्थकी क्रिया सम्पन्न करे। इस प्रकार करनेसे तीर्थका फल मिला करता है।५३। चैत्र वैशाख, आश्विन, पौष, फाल्गुन और माघ—इतने महीनोंमें और चन्द्रसूर्य्यग्रहण समयमें गयाक्षेत्रमें पिण्डदान तीनो लोकोंको दुर्लभ है—इसमें सन्देह नहीं।५४। गयाक्षेत्रके भीतर तीर्थ छोड़कर

सान्निध्यं सर्व्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरं ॥ ५५ ॥
इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवाराहकल्पे गयामाहात्म्ये
पिण्डदानफलकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः।

नारद उवाच। गयासुरः कथम्भूतः किंप्रभावः किमात्मकः। तपस्तप्तं कथं तेन कथं देहपवित्रता ।१। सनत्कुमार उवाच। विष्णोर्नाभ्यम्बुजाज्जातो ब्रह्मा लोकपितामहः। प्रजाः ससर्ज संप्रोक्तः पूर्व्वं देवेन विष्णुना ॥ २ ॥ आसुरेणैव भावेन असुरानसृजत् पुरा। सौमनस्येन भावेन देवान् सुमनसोऽसृजत्॥ ३ ॥

और कोई स्थान नहीं दिखाई देता, इस स्थानमें सब तीर्थ विराजते हैं, इसीसे गयाक्षेत्र, सर्व्वतीर्थोंसे श्रेष्ठ है। ५५।

इति प्रथम अध्याय।

नारद बोले, गयासुर कौन है, उसका प्रभाव कैसा है, उसका शरीरही कैसा है, किस भांति उसने तपस्या की थी और किस भांति उसकी देह पवित्र हुई? यह सब कहिये ।१। सनत्कुमार बोले, लोकके पितामह ब्रह्माने विष्णुकी नाभिके कमलसे उत्पन्न होकर देवदेव विष्णुके आदेशसे प्रजाकी सृष्टि की।२। उन्होंने पूर्व्वकालमें क्रूरभावसे असुरोंकी और

गयासुरोऽसुराणाञ्च महाबलपराक्रमः। योजनानां सपादञ्च शतं तस्योच्छ्रयः स्मृतः। स्थूलः षष्टियोजनानां श्रेष्ठोऽसौ वैष्णवः स्मृतः॥ ४॥ कोलाहले गिरिवरे तपस्तेपे सुदारुणं। बहुवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासं स्थितोऽभवत्॥ ५॥ तत्तपस्तापिता देवाः संक्षोभं परमं ययुः। ब्रह्मलोकं गता देवा ऊचुस्तेऽथ पितामहं॥ ६॥ गयासुराद्रच देव ब्रह्मा देवांस्ततोऽब्रवीत्। व्रजामः शङ्करं देवा ब्रह्माद्याश्च गताः शिवं॥७॥ कैलासे चाब्रुवन्नत्वा रक्ष देव महासुरात्। ब्रह्माद्या-

---

सौम्यभावसे प्रसन्नचित्त होकर देवगणकी सृष्टि की। ३। उसी असुरकुलमें महाबली पराक्रमी गयासुरकी उत्पत्ति हुई। उनकी देह एक सौ पचीस योजन ऊंची और उनकी स्थूलता साठ योजन थी। वह परम वैष्णव थे। वह कोलाहल नाम पहाड़पर जाकर श्वासरोध करते हुए अनेक सहस्र वर्षतक कठोर तपस्यामें निमग्न रहे। ४ ५। देवगणने उनके तपःप्रभावसे परम क्षोभ पाकर और ब्रह्मलोकमें जाकर लोकपितामह ब्रह्माके आगे निवेदन किया। ६। उन लोगोंने कहा, हे देव! गयासुरके हाथसे हमलोगोंको बचाइये। तब ब्रह्माने देवताओंसे कहा, हे देवताओ! चलो, हमलोग शङ्करके पास चलें। यह कहकर ब्रह्मादि देवगणने शङ्करकी ओर यात्रा की। ७। उन लोगोंने कैलासमें जाकर देवदेव शङ्करको प्रणाम करके कहा,

नन्नवीच्छम्भुर्व्रजामः शरणां हरिं ॥ ८ ॥ क्षीराब्धौ देवदेवेशः स नः श्रेयो विधास्यति । ब्रह्मा महेश्वरो देवाः विष्णुं नत्वा तु तुष्टुवुः ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः । ओं नमो विष्णवे भर्तृ सर्व्वेषां प्रभविष्णवे । रोचिष्णवे जिष्णवे च राक्षसादिग्रसिष्णवे ॥ १० ॥ धरिष्णवे-ऽखिलस्यास्य योगिनां पारयिष्णवे । वर्द्धिष्णवे ह्यनन्ताय नमो भ्राजिष्णवे नमः ॥ ११ ॥ सनत्कुमार

हे देव ! हमको महासुरके हाथसे रख लीजिये । तब शम्भुने ब्रह्मादि देवगणसे कहा, चलो । हम लोग हरिके पास जाकर उनका शरण ग्रहण करें । ८ । वह देवाधिदेव हरि क्षीर-सागरमें विराजते हैं, वही हमारे कल्याणका विधान करेंगे। यह कहकर क्षीरसागरमें उपस्थित होकर ब्रह्मा, महेश्वर और अन्यान्य देवगण इन कहे हुए वचनोंद्वारा विष्णुको प्रणाम करके स्तव करने लगे । ९ । देवगण बोले, हे भगवन् ! तुम सर्व्वव्यापी होनेसे विष्णु, सर्व्व पालक होनेसे भरिष्णु, सबके प्रभावका कारण होनेसे प्रभविष्णु, स्वयंप्रकाशवान् होनेसे रोचिष्णु, सर्व्वजयी होनेसे जिष्णु और राक्षस आदिका ग्रास करनेसे राक्षसादिग्रसिष्णु हो, तुमको ओंकारपूर्व्वक नमस्कार है। १० । इस अखिल विषयगोचर पदार्थका धारण करनेसे धरिष्णु, योगियोंको भवसागरसे पार पहुंचनेकी शक्तिदेनेसे पारयिष्णु, वृद्धिशील होनेसे वर्धिष्णु और ज्योतिर्मय होनेसे भ्राजिष्णु हो, तुमको नमस्कार है। ११ । सनत्कुमार बोले,

उवाच। एवं स्तुतो वासुदेवः सुराणां दर्शनं ददौ। किमर्थमागता यूयं देवेनोक्तास्तमब्रुवन्॥ १२॥ गयासुरभयाद्देव रक्षास्मानब्रवीद्धरिः। ब्रह्माद्या यान्तु तं दैत्यञ्चागमिष्याम्यहं ततः॥ १३॥ केशवो गरुड़ारूढ़ो वरं दातुं गयासुरे। सर्व्वे स्वं स्वं समास्थाय ययुर्वाहनमुत्तमं॥ १४॥ ऊचुस्तं वासुदेवाद्याः किमर्थं तप्यते त्वया। सन्तुष्टाश्चागताः सर्व्वे वरं ब्रूहि गयासुर॥ १५॥ गयासुर उवाच। यदि तुष्टास्तु मे देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सर्व्वदेवद्विजातिभ्यो यज्ञतीर्थ-

---

भगवान् वासुदेवने इस प्रकार स्तुत होकर देवताओंको दर्शन दिया और बोले, हे देवगण! तुमलोग किस लिये आये हो? तब देवताओंने प्रभुद्वारा जिज्ञासित होकर कहा, हे देव! हमें गयासुरके भयसे बचाइये। हरिने कहा, हे ब्रह्मादिदेवगण! तुम सब उस दैत्यके पास जाओ। मैं भी पीछेसे वहीं आता हूं। १२—१३। केशवके यह कहकर गयासुरको वर देनेके लिये गरुड़ारूढ़ प्रस्थान करते देखकर अन्यान्य देवगण भी अपने अपने अत्युत्तम वाहनोंपर चढ़कर चले। १४। वासुदेव प्रभृति देवताओंने वहां पहुंचकर दैत्यसे कहा, हे गयासुर! तुम किस लिये तपस्या करते हो? हम लोग तुम्हारी तपस्या देखनेसे सन्तुष्ट होकर आये हैं, वर मांगो। १५। गयासुर बोले, हे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादि देवगण! यदि आप लोग

शिलोच्चयात्। देवेभ्योऽतिपवित्रोऽहमृषिभ्योऽपि शिवा-
व्ययात् ॥ १६ ॥ ज्ञानिभ्यश्चापि कर्मिभ्यो धर्मिभ्यश्च
तथा पुनः। मन्त्रिभ्योऽतिपवित्रोऽहं पवित्रः स्यां सदा-
सुरः ॥ १७ ॥ पवित्रमस्तु तं देवा दैत्यमुक्त्वा ययु-
र्दिवम्। दृष्ट्वा दैत्यं ततः स्पृष्ट्वा सर्व्वे हरिपुरं ययुः ॥
१८ ॥ शून्य लोकत्रयं जातं शून्या यमपुरी ह्यभूत्।
यम इन्द्रादिभिः सार्द्धं ब्रह्मलोकं ततोऽगमत् ॥ १९ ॥
ब्रह्माणमूचिरे देवा गयासुरविलोकिताः। त्वया
दत्तोऽधिकारो वै त्वं गृहाण पितामह ॥ २० ॥ ब्रह्मा-

मुझपर सचमुचही प्रसन्न हुए हैं, तो समस्त देवता, ब्राह्मण, यज्ञ, तीर्थ, गिरि, देवदेवी और ऋषियोंके कुलसे भी मुझे अधिकतर पवित्र कीजिये। १६। ज्ञानी, कर्मी, और धर्मी प्रभृति समस्त पवित्र वस्तुओंसे भी जिससे मैं पवित्र हो जाऊं : मेरे स्पर्शहीसे जिससे सब छुटकारा पा जावें। १७। गयासुरके ऐसे प्रार्थना करनेपर "तुम निखिल पवित्र वस्तुओंसे भी परम पवित्र हुए"—इतना कहकर देवता लोग राक्षसको वरदान देते हुए स्वर्गको चले गये। तब देवदत्त वरके प्रभावसे दैत्यका दर्शन और स्पर्श करके सभी लोग पापोंसे छूटकर वैकुण्ठको जाने लगे। १८। इस प्रकार सभीके हरिधाममें पहुंचनेसे क्रमशः तीनों लोक शून्य होने लगे; सो नरकमें किसीको गमन न करते देखकर यमराज इन्द्रादिके साथ ब्रह्मलोकको गये।१६। उन्होंने ब्रह्माके निकट पहुंचकर कहा, हे ब्रह्मन्! आपने

ब्रवीत्ततो देवान् ब्रजामो विष्णुमव्ययं। ब्रह्मादयोऽब्रुवन् विष्णुं त्वया दत्तवरोऽसुरः॥ २१॥ तद्दर्शनाद् ययुः स्वर्गं शून्यं लोकत्रयं ह्यभूत्। देवैस्तुष्टो वासुदेवो ब्रह्माणं स वचोऽब्रवीत्॥ २२॥ गत्वासुरं प्रार्थयस्व यज्ञार्थं देहि देहकम्। विष्णूक्तः ससुरो ब्रह्मा गत्वापश्यन्महासुरम्॥ २३॥ गयासुरोऽब्रवीद्दृष्ट्वा ब्रह्माणं त्रिदशैः सह। संपूज्योत्थाय विधिवत् प्रणतः श्रद्धयान्वितः॥ २४॥ गयासुर उवाच। अद्य

लोक पालनेके लिये हमें जितने अधिकार दिये हैं, गयासुरके द्वारा वे सभी नष्ट हो गये। सो इन वृथा अधिकारोंसे अब हमको क्या प्रयोजन है? आप उन अधिकारोंको फेर लीजिये। २०। ब्रह्मा बोले, चलो, हम सब लोग विष्णुके पास चलें। यह कहकर हरिधाममें पहुंचकर सबने प्रभुको कहा, हे भगवन्! आपसे वरदान पाये हुए गयासुरको देखकर सभी देवलोकको चले जाते हैं, सो तीनो भुवन शून्य हुए जाते हैं। तब वासुदेवने सब देवताओंको प्रसन्न करके ब्रह्मासे सम्बोधनपूर्व्वक कहा, हे ब्रह्मन्! गयासुरके पास जाकर यज्ञके लिये उसके शरीरकी याचना करो। ब्रह्मादि देवगण विष्णुकी ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यके पास पहुंचे। तब दैत्यराजने सुरगणके साथ ब्रह्माको आया हुआ देखकर अभ्युत्थानपूर्व्वक बड़ी श्रद्धासे ब्रह्माको नमस्कार करके कहा। २१—२४। गयासुर

मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः। यन्मागतोऽतिथि-ब्रह्मा सर्व्वं प्राप्तं मयाद्य वै ॥ २५ ॥ योगिन् योगाङ्ग-वित् सर्व्वलोकस्वामिन् पितर्गुरो। यदर्थमागतो ब्रह्मंस्तत् कार्य्यं करवाण्यहं ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच। पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टानि भ्रमता मया। यज्ञार्थं न तु ते तानि पवित्राणि शरीरतः ॥ २७ ॥ त्वया देहे पवित्रत्वं प्राप्तं विष्णुप्रसादतः। अतः पवित्रं देहं त्वं यज्ञार्थं देहि मेऽसुर ॥ २८ ॥ गयासुर उवाच। धन्यो-ऽहं देवदेवेश यद्देहं प्रार्थ्यते त्वया। पितृवंशे कृतार्थो-ऽहं मातृवंशे तथैव च ॥ २९ ॥ त्वयैवोत्पादितो देहः

बोले, आज हमारा जन्म सफल हुआ, आज हमारी तपस्या भी फलवती हुई, और आज हमारे करतलमें सभी कुछ आ गया, सन्देह नहीं है; क्योंकि विधाता आज स्वयं अतिथि बनकर आये हैं। २५। हे योगिन्! हे योगाङ्गवित्। हे सर्व-स्वामिन्! हे पितः! हे गुरो! हे ब्रह्मन्! आप जिसके लिये आये हैं, मैं उसे बेखटके दे डालूंगा। २६। ब्रह्मा बोले, हे असुर! पृथिवीमें जितने तीर्थ हैं, यज्ञ सिद्ध करनेकी कामनासे घूम फिरकर मैंने उन सबको देख लिया है, किन्तु तुम्हारे शरी-रकी अपेक्षा उनमेंसे कोई भी पवित्र नहीं है। भगवान् विष्णुके प्रसादसे तुम्हारी देह परम पवित्र हो गई है, सो यज्ञके लिये अपनी पवित्र देह हमको दो। २७—२८। गयासुर बोले, हे देवदेवश! आपके मेरी देह मांगनेपर मैं धन्य हुआ। मैं

पवित्रस्तु त्वया कृतः। सर्व्वेषामुपकाराय यागोऽवश्यं भविष्यति॥ ३०॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा सोऽपतद्भूमौ श्वेतकल्पे गयासुरः। नैऋतिं दिश-माश्रित्य तदा कोलाहले गिरौ॥ ३१॥ शिरः कृत्वो-त्तरे दैत्यः पादौ कृत्वा तु दक्षिणे। ब्रह्मा संभृतसंभारो मानसान् ऋत्विजोऽसृजत्॥ ३२॥ अग्निशर्म्माणममृतं शौनकं याजलिं मृदुं। कुथुमिं वेदकौण्डिन्यौ हारीतं काश्यपं कृपं॥ ३३॥ गार्ग्यं कौशिकवाशिष्ठौ मुनिं

पितृकुल और मातृकुलमें कृतार्थ हुआ, सन्देह नहीं है। २६। तुम्हींसे इस देहकी उत्पत्ति हुई है, तुम्हीने इस देहको पवित्र किया है, सो अब सर्व्वजनके हितके लिये इस शरीरसे यज्ञ भी निर्विघ्न सम्पन्न होगा। ३०। सनत्कुमार बोले, गयासुर ऐसा कहकर श्वेतवाराह कल्पमें कोलाहल गिरिकी नैऋत दिशामें उत्तर दिशाकी ओर शिर और दक्षि-णमें दोनो पैर रखकर सो गये। तब ब्रह्माने यज्ञीय द्रव्यसमूह लाकर अपने मनसे—यज्ञ करनेके लिये ब्राह्मण उत्पन्न किये। ३१—३२। सर्व्वलोकके पितामह ब्रह्माने अग्निशर्मा, अमृत, शौनक, याजलि, मृदु, कुथुमि, वेद, कौण्डिन्य, हारीत, काश्यप, कृप, गार्ग्य, कौशिक, वासिष्ठ, भार्गव, अव्यय, वृद्ध पराशर, काठक, माण्डव्य, श्रुतिकेवल, श्वेत, सुताल, दमन, सुहोत्र, कङ्क, लौगाक्षि, महाबाहु, जैगीषव्य, दधिपञ्चमुख,

भार्गवमव्ययं। वृद्धं पराशरं कण्वं माण्डव्यं श्रुति-कोविदं ॥ ३४ ॥ श्वेतं सुतालं दमनं सुहोत्रं कङ्कसेन्न च। लौगाक्षिञ्च महाबाहुं जैगीषव्यं तथैव च ॥ ३५ ॥ दधिपञ्चमुखं विप्रं ऋषभं कर्कमेव च। कात्यायनं गोभिलञ्च मुनिमुग्रमहाव्रतं ॥ ३६ ॥ सुकपालं गौतमञ्च तथा वेदशिरोव्रतं। जटामालिनमव्यग्रं चाट्टहासञ्च दारुणं ॥ ३७ ॥ आत्रेयञ्चाप्यङ्गिरसमुपमन्युं महा-व्रतं। गोकर्णञ्च गुहावासं शिखण्डिनमुमाव्रतं ॥ ३८॥ एतानन्यांश्च विप्रेन्द्रान् वेधा लोकपितामहः। परि-कल्प्याकरोद्द यागं गयासुरशरीरके ॥ ३९ ॥ अग्नि-शर्म्मापि पञ्चाग्नीन् मुखादेतानथासृजत्। दक्षिणाग्निं गार्हपत्याहवनीयौ तपोऽव्ययः। सभ्यावसथ्यौ देवर्षे येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः॥ ४० ॥ यज्ञस्य च प्रतिष्ठार्थं

ऋषभ, कर्क, कात्यायन, गोभिल, उग्रव्रत, महाव्रत, सुकपाल, गौतम, वेदशिरोव्रत, जटामाली, अव्यग्र, चाट्टहास, दारुण, आत्रेय, अङ्गिरा, महाव्रत उपमन्यु, गोकर्ण, गुहावास, शिखण्डी, उमाव्रत, और अन्यान्य ब्राह्मणवरोंको वरण-कर दैत्यकी देहमें यज्ञ आरम्भ की। ३३—३९। तिसके पीछे अग्निशर्माने यज्ञकी प्रतिष्ठाके लिये अपने तपके प्रभावसे अपने मुखसे दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ नामक पांच अग्निकी सृष्टि की। ४०। ब्रह्माने सुरगणके साथ यज्ञमें

विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ । कृत्वा पूर्णाहुतिं ब्रह्मा स्नात्वा चावभृथेन तु ॥ ४१ ॥ यज्ञयूपं सुरैः सार्द्धं समानीय व्यरोपयत् । ब्रह्मणः सरसां श्रेष्ठं सरस्येवाश्रितं शुभं ॥ ४२ ॥ यज्ञवाटे सुरैः सार्द्धं गयासुरमपश्यत । चलितश्चकितो ब्रह्मा धर्म्मराजमभाषत ॥ ४३ ॥ जाता गृहे तव शिला समानीयाविचारयन् । दैत्यस्य शीघ्रं शिरसि तां धारय ममाज्ञया ॥ ४४ ॥ निश्चलार्थं यमः श्रुत्वा धारयन् मस्तके शिलां । शिलायां धारितायान्तु सशिलश्चासुरोऽचलत् ॥ ४५ ॥ देवानूचेऽथ रुद्रादीन् शिलायां निश्चलाः किल । तिष्ठन्तु देवाः सकला-

---

पूर्णाहुति देकर और शान्तिजलसे स्नान करके द्विजोंको दक्षिणा दी । ४१ । सुरगणके साथ शुभ यज्ञीय यूपकाष्ठमें सर्वोत्तमोत्तम ब्रह्मसरोवर स्थापन करके रोपण किया । ४२ । देवगणके साथ यज्ञशालामें जाकर और गयासुरको हलते जुलते देखकर डरके मारे धर्म्मराजसे कहा, मेरी आज्ञामें किसी तरहका विचार न करके तुम्हारे घरमें जो अतिभार शिला है, उसेही लाकर इस दैत्यके शिरपर धर दो । ४३—४४ । यह सुनकर और दैत्यराजको स्थिर कर रखनेके लिये उसके शिरपर यमराजने वही बड़ी भारी शिला धर दी, तब भी गयासुर शिला धरे हुए ही चलने लगे । ४५ । तब उन्होंने रुद्रादि देवगणको अचल भावसे उसी शिलापर बैठ जानेको कहा ; सुरगण अपने

स्तथेत्युक्त्वा च ते स्थिताः ॥ ४६ ॥ देवाः पादैश्च-चिह्ना तथापि चलितोऽसुरः। ब्रह्माथ व्याकुलो विष्णुं गतः क्षीराब्धिशायिनम्। तुष्टाव प्रणतो भूत्वा विष्णुं त्रिजगतां पतिम् ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच। ब्रह्माण्डस्य पते नाथ नमामि जगतां पतिम्। गतिं कीर्त्तिमतां नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४८ ॥ विष्वक्सेनोऽब्रवीत् विष्णुं देव त्वां स्तौति पद्मजः। हरिराह्वानय त्वं तं विष्वक्सेनः स तमानयत्। अजमूचे हरिः कस्मात् आगतोऽसि वदस्व तत् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मोवाच। देवदेव कृते योगे प्रचचाल गयासुरः। शिलायां देव-

---

अपने चरणोंके चिह्न आदिका लक्ष्य करके बड़ा बोझ लेकर उस शिलापर बैठ गये, तो भी गयासुर आगेकी भांति चलने लगे। यह देखकर ब्रह्माने अति कातर होकर क्षीरसागरमें सोनेवाले त्रिलोकीनाथ हरिके पास जाकर और प्रणाम करके निम्नोक्त स्तवसे उन्हें जगाना आरम्भ किया। ४६—४७। ब्रह्माने कहा, हे ब्रह्माण्डपते! हे जगत्पते! तुमको प्रणाम। तुमही कीर्त्तिमान् लोगोंकी गति हो और तुम ही भुक्ति मुक्तिके देनेवाले हो, तुमको नमस्कार है। ४८। विष्वक्सेन नामक विष्णुपार्षदने उनसे कहा, हे देव! ब्रह्मा तुम्हारी स्तुति करते हैं; विष्णुके आदेशसे ब्रह्माने वहां आकर अपने आनेका कारण कहा। ४९। ब्रह्माने कहा, हे देव! यज्ञके अन्तमें

रूपिण्यां न्यस्तायां तस्य मस्तके ॥ ५० ॥ रुद्रादिषु च देवेषु संस्थितेष्वसुरोऽचलत् । इदानीं निश्चलार्थं हि प्रसादं कुरु माधव ॥ ५१ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ह्याकृष्य स्वशरीरतः । मूर्त्तिं ददौ निश्चलार्थं ब्रह्मणे भगवान् हरिः ॥ ५२ ॥ आनीय मूर्त्तिं ब्रह्मापि शिलायां समधारयत् । तथापि चलितं वीक्ष्य पुनर्देवमिहाह्वयत् ॥ ५३ ॥ आगत्य विष्णुः क्षीराब्धेः शिलायां संस्थितोऽभवत् । जनार्द्दनाभिधानेन पुण्डरीकाक्षनामतः । शिलायां निश्चलार्थं हि स्वयमादिगदाधरः ॥ ५४ ॥ निश्चलार्थं पञ्चधासीच्छिलायां प्रपिता-

---

गयासुरको चलते देखकर उसके शिरपर देवस्वरूपिणी गुरुभार शिला रखी गई और फिर उसपर रुद्रादि देवगण बैठे, तो भी गयासुर आगेकी भांति चलते हैं, सो हे माधव! अब उस दैत्यको निश्चल रखनेके लिये आप किसी उपायका विधान कीजिये। ५०—५१। भगवान् हरिने ब्रह्माके वाक्यपर अपनी देहसे एक मूर्त्ति निकालकर ब्रह्माको दी; ब्रह्माने वह मूर्त्ति लाकर शिलाके ऊपर रख दी; पर उससे भी उस दैत्यको चलते देखकर फिर जाकर स्वयं श्रीहरिको ही वहां वे आये। ५२—५३। गयासुरके निश्चल करनेके लिये क्षीरसागरसे विष्णु स्वयं आकर शिलाके ऊपर जनार्दन पुण्डरीकाक्ष और आदिगदाधर—इन तीन नामोंसे बैठे। ५४। प्रपितामह,

महः। पितामहोऽथ फल्गवीशः केदारः कनकेश्वरः।
ब्रह्मा स्थितः स्वयं तत्र गजरूपी विनायकः ॥ ५५ ॥
गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कस्त्रिधा रविः। लक्ष्मीः
सीताभिधानेन गौरी वै मङ्गलाह्वया ॥ ५६ ॥ गायत्री
चैव सावित्री त्रिसन्ध्या च सरस्वती। इन्द्रो बृहस्पतिः
पूषा वसवोऽष्टौ महाबलाः ॥ ५७ ॥ विश्वे देवाश्चाश्वि-
नेयौ मारुतो विश्वनायकः। यक्षोरगगन्धर्वास्तस्थु-
र्देवाः स्वशक्तिभिः ॥५८॥ आद्यया गदया चासौ यस्मात्
दैत्यः स्थिरीकृतः। स्थित इत्येव हरिणा तस्मादादि-
गदाधरः ॥ ५९ ॥ ऊचे गयासुरो देवान् किमर्थं

पितामह, फल्गवीश, केदार और कनकेश्वर—इसतरह पञ्चभाग करके ब्रह्मा वहां बैठे; विनायकने हस्तीका रूप धारण किया; गयादित्य, उत्तरार्क और दक्षिणार्क—इन तीन भागोंमें रवि विभक्त हुए; लक्ष्मीका नाम सीता और गौरीका नाम मङ्गला देवी हुआ। ५५—५६। गायत्री, सावित्री और सरस्वती—इन नामोंसे सन्ध्याकी तीन मूर्त्तियां हुईं; इन्द्र, बृहस्पति, पूषा, महाबली अष्टवसु, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमारयुगल, विश्वनियामक मारुत, यक्ष, उरग, गन्धर्व इत्यादि समस्त देवगण अपनी अपनी पत्नियों समेत रहे। ५७—५८। आदिगदा नामक अस्त्रसे दैत्यराजको स्थिर करके उसी अस्त्रके साथ श्रीहरि वहां रहते हैं, इसी लिये उनको आदिगदाधर कहते हैं। ५९।

वञ्चितो ह्यहं। यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरममलं मया ॥ ६० ॥ विष्णोर्व्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहं। यत् सुरैः पीड़ितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा। पीड़ितो यद्यहं देवाः प्रसन्नाः सन्तु सर्व्वदा ॥६१॥ गदाधराद्यस्तुष्टाः प्रोचुर्दैत्यं गयासुरम्। वरं ब्रूहि प्रसन्नाः स्मो देवानूचे गयासुरः ॥ ६२ ॥ गयासुर उवाच। यावत् पृथ्वी पर्व्वताश्च यावच्चन्द्रार्कतारकाः। तावत् शिलायां तिष्ठन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। अन्ये च सकला देवा मन्नाम्ना क्षेत्रमस्तु वै ॥ ६३ ॥ पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः। तन्मध्ये सर्व्वतीर्थानि प्रयच्छन्ति हितं

गयासुरने देवगणसे कहा, यज्ञके लिये मैंने अपनी पवित्र देह ब्रह्माको दी है, मुझे आपलोग छलते क्यों हैं? ६०। क्या विष्णुके आदेशमात्रसे मैं निश्चल नहीं हो जाता? फिर मुझे देवता लोग इतनी पीड़ा क्यों देते हैं? श्रीहरि ही क्यों गदासे मुझे पीटते हैं? मुझे ऐसा कष्ट देकरही यदि देवता लोग प्रसन्न हैं, तो प्रसन्न रहें। ६१। गदाधर प्रभृति देवगण प्रसन्न होकर गयासुरसे बोले, हे दैत्यराज! हमलोग प्रसन्न हुए हैं, आप वरदान मांगें। ६२। गयासुरने कहा, जितने दिनतक पृथिवी, गिरि, तारागण, और चन्द्र सूर्यादि रहें, तबतक इस शिलापर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर और अन्यान्य देवगण अवस्थान करें और यह क्षेत्र मेरेही नामसे प्रसिद्ध हो। ६३। यह गयाक्षेत्र

नृणां ॥ ६४ ॥ स्नानादितर्पणं कृत्वा पिण्डदानात् फलाधिकं। महात्मा वै सहस्रन्तु कुलानां चोद्धरेन्नरः ॥६५॥ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण यूयं तिष्ठत सर्व्वदा। गदाधरः स्वयं लोकाद् भूयात् सर्व्वाघनाशनः ॥ ६६ ॥ श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते। ब्रह्महत्यादिकं पापं विनश्यतु च सेविनाम् ॥ ६७ ॥ नैमिषं पुष्करं गङ्गा प्रयागश्चाविमुक्तिकं। एतान्यन्यानि तीर्थानि दिवि भुव्यन्तरीक्षतः। समायान्तु सदा नृणां प्रयच्छन्तु हितं सुराः ॥ ६८ ॥ किम्बहुतया सुरगणा युष्माखे-

---

पांच कोसका हो और एक कोसका नाम गयाशिर पड़े; इसीमें समस्त तीर्थ आकर सर्व्वलोकके हितनिमित्त प्रतिष्ठित हों ।६४। इस तीर्थमें स्नान तर्पण करके पिण्डदानसे अधिक फल मिलेगा और सब लोग अपने साथ सहस्र कुलको—मुक्ति पावेंगे। ६५। हे देवगण। आपलोग इस स्थानमें प्रकट और अप्रकट रूपसे सदाही ठहरिये; स्वयं गदाधर अर्च्चित होकर लोकके सर्व्वपाप दूर करें। ६६। जिनका यहां श्राद्धादि पिण्डदान होगा, वे लोग ब्रह्मलोकको जावेंगे। यहां वास करनेसे ब्रह्महत्यादि पाप दूर होंगे। ६७। हे सुरगण! नैमिष, पुष्कर, गङ्गा, प्रयाग और अविमुक्तक्षेत्र काशी—निखिल त्रिभुवन अर्थ स्वर्ग भूमि और अन्तरीक्षके अन्यान्य समस्त तीर्थ मनुष्योंके हितके लिये यहां आकर विराजें। ६८। हे सुरगण! मैं आप लोगोंसे

आपि देवता । चेन्न तिष्ठेदहं चापि समयः प्रतिपाल्यतां ॥ ६९ ॥ गयासुरवचः श्रुत्वा प्रोचुर्विष्ण्वादयः सुराः । त्वया यत् प्रार्थितं सर्व्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ ७० ॥ पितृणां वै कुलशतमात्मानं पिण्डदानतः । श्राद्धादिना नयिष्यन्ति ब्रह्मलोकमनामयं ॥ ७१ ॥ त्वत्पादानर्च्चयित्वा यास्यन्ति परमां गतिम् । देवैर्दत्तवरो दैत्यो हर्षितो निश्चलोऽभवत् ॥ ७२ ॥ स्थितेषु तत्र देवेषु ब्राह्मणेभ्यो ददावजः । ग्रामांश्च पञ्चपञ्चाशत् पञ्चक्रोशीं गयां तथा । गृहान् कृत्वा ददौ दिव्यान् सर्व्वोपस्करसंयुतान् ॥ ७३ ॥ कामधेनुं

अब अधिक क्या कहूं, आप लोगोंसे यदि एक भी इस क्षेत्रको छोड़ेगा, तो मैं भी तुरन्तही अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर उठ खड़ा हूंगा। ६९। गयासुरका वचन सुनकर विष्णु आदि देवताओंने कहा, तुम्हारा कहा हुआ सब वचनही निस्सन्देह सिद्ध होगा। ७०। यहां लोग पिण्डदान करके अपने साथ सौ कुलोंका परित्राण करते हुए अनामय ब्रह्मलोकमें जावेगे। ७१। मेरे चरण पूजकर मुक्ति मिलेगी। देवताओंसे ऐसा वर पाकर दैत्यराज हर्षसमेत निश्चल हो गये। ७२। देवताओंके वहां अवस्थान करनेपर ब्रह्माने वहां ब्राह्मणोंको बसाकर पचपन गावोंके साथ पञ्चक्रोशी गया दे डाली और समस्त उपकरण-

कल्पवृक्षं पारिजातादिकांस्तरून् । महानदीं क्षीर-वहां घृतकुल्यादिकांस्तथा ॥ ७४ ॥ मधुस्रवां मधुकुल्यां दध्याज्यादिसरांसि च । सुवर्णदीर्घिकां चैव बह्वन्नादिपर्व्वतान् ॥ ७५ ॥ भक्ष्यभोज्यफलादींश्च सर्व्वं ब्रह्मा सृजन् ददौ । न याचयध्वं विप्रेन्द्रा अन्यानुक्त्वा ददावजः । दत्त्वा ययौ ब्रह्मलोकं नत्वा ह्यादिगदाधरम् ॥ ७६ ॥ धर्म्मारण्ये तत्र धर्म्मं याजयित्वा ययाचिरे । धर्म्मयागे च लोभाद्वै प्रतिगृह्य धनादिकम् ॥ ७७ ॥ ततो ब्रह्मा समागत्य ब्राह्मणांस्तान् शशाप ह । कृतवन्तो यतो लोभं मद्दत्तेष्वखिले-

---

समेत अत्युत्तम दिव्य घर बना दिये । ७३ । कामधेनु, कल्पवृक्ष और पारिजात वगैरह वृक्ष, दूध और घीसे भरी महानदी, दधि और मधु प्रभृतिके सरोवर, सोनेकी पुष्करिणी, बहुप्रकार अन्नके पर्व्वत, भक्ष्य भोज्य फल आदि नाना प्रकारके द्रव्य सृजकर ब्रह्माने उन गयावासी ब्राह्मणोंको दिये और कहा, इसीसे प्रसन्न रहो, किसीसे कुछ मत मांगो । यह कहकर आदि-गदाधरको प्रणाम करते हुए ब्रह्मा ब्रह्मलोकको चले गये । ७४—७६ । तिसके पिछे इसके समीपवर्त्ती धर्म्मारण्य नामक स्थानमें एक बड़ा यज्ञ अनुष्ठित हुआ; इस धर्म्मयज्ञमें समस्त गयावासी ब्राह्मणोंने लोभवश धनादि लिया । ७७ । ब्रह्मा यह बात सुनकर गयाधाममें आये और ब्राह्मणोंको शाप

प्यपि ॥ ७८ ॥ तस्मात्तृष्णाधिकाद् यूयं द्विजा विद्याविवर्ज्जिताः । अस्मादीनां पर्व्वता ये ते च पाषाणपर्व्वताः ॥ ७९ ॥ नद्यादयो वारिवहा मृणमयाश्च तथा गृहाः । कामधेनुः कल्पवृक्षः स्वर्लोकमुपतिष्ठताम् ॥ ८० ॥ एवं शप्ता ब्रह्मणा ते प्रार्थयन्तोऽब्रुवन्नजम् । त्वया यद्दत्तमखिलं तत्सर्व्वं शापतो गतम् ॥ जीवनार्थं प्रसादं नो भगवन् कर्त्तुमर्हसि ॥८१॥ तत्श्रुत्वा ब्राह्मणान् ब्रह्मा प्रोवाचेदं दयान्वितः । तीर्थोपजीविका यूय-माचन्द्रार्कं भविष्यथ ॥ ८२ ॥ लोकाः पुण्या गयायां ये श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ।

देकर बोले, मेरी दी हुई बहुतेरी द्रव्यके मौजूद रहते भी लोभके मारे तुमने अन्य पुरुषोंका दान लिया है, इसी लिये तुम्हारी विषयतृष्णा अति प्रबल होगी, तुम विद्याहीन होगे, अन्नादिके पर्व्वत पाषाणमय हो जावेंगे, नदियोंमें जल बहेगा, घर मट्टीके हो जावेंगे और कामधेनु और कल्पवृक्ष स्वर्गको चले जावेंगे। ७८—८०। इस प्रकार शाप पाकर द्विजगणने अति कातर वाक्यसे ब्रह्माके निकट प्रार्थना की, हे देव ! आपने आगे हम लोगोंको जो जो दिया था, आपके शापसे वह सब कुछ नष्ट हो गया, अब कृपा करके जीवनधारणका उपाय हम लोगोंको बताइये। ८१। ब्रह्माने तब सदय होकर विप्रगणसे कहा, चन्द्र और सूर्य जबतक रहेंगे,तबतक तुम लोग भी

गुमान् ये पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥ ८३ ॥
आक्रान्तं दैत्यजठरं धर्म्मेण विरजाद्रिणा। नाभि-
कूपसमीपे तु देवी या विरजा स्थिता। तत्र पिण्डा-
दिकं कृत्वा त्रिसप्तकुलमुद्धरेत् । ८४ ॥ महेन्द्रगिरिणा
तस्य कृतौ पादौ सुनिश्चलौ। तत्र पिण्डादिकृत् सप्त
कुलान्युद्धरते नरः ॥ ८५ ॥

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवाराहकल्पे गयामाहात्म्ये
गयासुरनिश्चलो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

तीर्थसे जीविका निर्वाह करोगे। ८२। पुण्यवान् लोग गयामें
आकर श्राद्ध करते हुए ब्रह्मलोकमें जावगे और सदा तुम्हारी
अर्चना करेंगे उन्हें हम देवताओंकी पूजाका फल
मिलेगा। ८३। धर्म्मराजने विरजा नामक पर्व्वतद्वारा गयासुर
दैत्यका जटरदेश आक्रमण किया है; नाभि कूपके समीप यह
विरजा देवी हैं; यहां पिण्डदान करनेसे इक्कीस कुलका परि-
त्राण होता है। ८४। उस दैत्यके दोनों पांव महेन्द्र पर्व्वतके
द्वारा निश्चल किये गये हैं, यहां पिण्डादि पारनेसे सात कुलका
परित्राण होता है। ८५।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

तपोऽन्विता ॥ १० ॥ पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र चराम्यि परमं तपः। कामावाप्तिर्भवेद्‌ यावत्तावदेतत् प्रवर्त्तनम् ॥ ११ ॥ धर्म्मव्रतां मरीचिस्तामुवाच प्रीतिपूर्व्वकं। पतिव्रता दर्शनान्मे भविष्यसि शुभव्रते ॥ १२ ॥ पतिव्रतेच्छया पृथ्वीं विचरामि दिवानिशं। लब्धेत् पतिव्रता जाता भजन्तं भज मां वरम् ॥ १३ ॥ लोके न त्वादृशी कन्या मम तुल्यो न ते वरः। धर्म्मव्रते धर्म्मपुत्रि तस्मात्त्वं भव मेऽधुना ॥ १४ ॥ धर्म्मव्रता मुनिं प्राह धर्म्मं याचय सुव्रत। तत् श्रुत्वा धर्म्मगमन्मुनिं धर्म्मो ददर्श ह ॥ १५ ॥ तेजःपुञ्जं वरं मत्वा

तपस्या करते करते कहा, मैं धर्म्मकी पुत्री हूं, मेरा नाम धर्म्मव्रता है, मैं पति पानेके लिये इस दुश्चर तपस्यामें प्रवृत्त हुई हूं, कामना पूरी न होनेतक इसी भांति रहूंगी। ११। मरीचिने प्रीतिपूर्व्वक धर्म्मव्रतासे कहा, हे सुव्रते! मेरे दर्शनहीसे तुम पतिव्रता होगी। मैं जिस पतिव्रताके पानेके लिये दिन रात पृथ्वीमें भ्रमण करता हूं, निश्चय करके तुम्ही वह पतिव्रता जन्मी हो; सो तुम मुझे भजने योग्य हो। १२—१३। पृथ्वीमें तुम्हारे समान कन्या और हमारे समान वर नहीं है; हे धर्म्मव्रते! इसी लिये तुम अब हमारी हो जाओ। १४। धर्म्मव्रताने मुनिसे कहा, धर्म्मके पास जाकर प्रार्थना कीजिये। यह सुनकर धर्म्मके निकट जानेपर धर्म्मने उन मुनिको

अर्घ्यपाद्यादिनार्च्चयत्। किमर्थमागतः पृष्टो मरीचिर्धर्म्म-मब्रवीत् ॥ १६ ॥ कन्यार्थं भ्रमता पृथ्वीं दृष्टा ते कन्यका मया। मह्यं कन्याञ्च तां देहि श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १७ ॥ अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य धर्म्मः प्रोचे तथेति तम्। धर्म्मव्रतां समानीय दत्तवांस्तां मरीचये ॥ १८ ॥ ब्राह्मेण तु विवाहेन धनरत्नादिकं ददौ। वरञ्च दत्त-वांस्तस्मै तद्वाक्यञ्च यथाकृतम्। अग्निहोत्रेण सहितां स्वाश्रमं तां द्विजोऽनयत् ॥ १९ ॥ रेमे मुनिस्तया सार्द्धं यथा विष्णुः श्रिया सह। पार्व्वत्या च यथा शम्भुः सरस्वत्या यथा ह्यजः ॥ २० ॥ जज्ञे पुत्रशतं तस्यां

देखा। १५। पाद्यअर्घ्य आदिसे पूजा करके धर्म्मने उन तेजःपुञ्ज. ऋषिवरको प्रणाम करते हुए आगमनका कारण पूछा। मरीचिने धर्म्मको कहा, मैंने विवाहार्थी होकर धरत्तीपर पर्य्यटन करते करते आपकी कन्या देखी। मुझे वह कन्या देनेसे आपका मनोरथ सिद्ध होगा। १६—१७। "ऐसा ही हो" कहकर धर्म्म अपनी धर्म्मव्रताको ले आये और अर्घ्यादिसे पूजा करके उसे मरीचिको सम्प्रदान कर दिया। १८। ब्राह्मविधिसे विवाहकर्म्म सम्पन्न होनेपर वरको धनरत्न आदि यौतुक दिया गया। मरीचि स्ववचनानुसार कार्य्य सिद्धि देखकर धर्म्मको मनोवाञ्छित वर देते हुए अग्निहोत्रसमेत पतिव्रताको लाकर आश्रममें आये। १९। विष्णुके साथ

तपोऽ[र्थं]चैर्विबुधोपमम्। मरीचिः फलपुष्पार्थं वनं गत्वा समागतः ॥ २१ ॥ श्रान्तः कदाचित्तां पत्नीमुवाचेति पतिव्रतां। भुक्त्वा तु शयनस्थस्य पादसंवाहनं कुरु ॥२२॥ धर्म्मव्रता तथेत्युक्त्वा शयानस्य च सा मुनेः। पादसंवाहनं चक्रे घृतेनाभ्यज्य तत्परा ॥ २३ ॥ निद्रायमाणेऽथ मुनौ ब्रह्मा तं देशमागतः। दृष्ट्वैव दृष्ट्वा ब्रह्माणं सम-र्च्चयितुं प्रभुं ॥ २४ ॥ पादसंवाहनं कार्य्यं किं ब्रह्माणां प्रपूजये। इत्याकुला समुत्तस्थौ नत्वा सा तं गुरो-र्गुरुं ॥ २५ ॥ अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा ब्रह्माणं सम-

---

लक्ष्मीकी भांति, शम्भुके साथ पार्व्वतीकी भांति और ब्रह्माके साथ सरस्वतीकी भांति वे दोनो रमण करने लगे। २०। उस कन्याके गर्भसे क्रमशः मरीचिके देवसदृश एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। तदनन्तर एक दिन वनसे फलपुष्प आदि लानेसे थके हुए मरीचि मुनि आहारके पीछे सो गये और पतिव्रता नारीसे पदसेवा करनेकी बात कही। २१—२२। "ऐसा ही हो" कहकर धर्म्मव्रता घी मलकर शय्यास्थित ऋषिकी चरण-सेवा करने लगी। २३। क्रमसे ऋषिको निद्रा आई; ऐसेही समयमें वहां ब्रह्मा आकर उपस्थित हुए। जगत्प्रभु विधिको देखकर पूजा करनेकी वासना हुई; सो वह मनही मन सोचने लगी, इस समय चरणसेवा करना ही उचित है अथवा ब्रह्माकी पूजा यथानियम कर्त्तव्य है? इसी प्रकार व्याकुलचित्तसे

पूजयत्। सतकृतायान्तु शय्यायां विश्राममकरोदजः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भर्त्ता समुत्तस्थौ स्वतल्पतः। धर्मव्रतामपश्यन् स विप्रः क्रुद्धः शशाप ताम् ॥ २७ ॥ पादसंवाहनं त्यक्त्वा यस्मादाज्ञां विहाय मे। गतान्यत्र ततः पापे शापो दत्तः शिला भव ॥ २८ ॥ भर्त्तां धर्म्म-व्रता शप्ता मरीचिं प्राह कोपिता। शयाने त्वयि संप्राप्तो ब्रह्मा त्वज्जनको गुरुः ॥ २९ ॥ त्वयोत्थाय हि कर्त्तव्यं श्वशुरोः पूजनं सदा। मया तु धर्म्मचारिण्या तव कार्य्यं कृते मुने ॥ ३० ॥ अदोषापि यतः शप्ता तस्माच्छापं ददामि ते। त्वञ्च शापं महादेवाद्भर्त्तः

उठकर उन्होंने गुरुके गुरुको प्रणाम किया; पाद्यअर्घ्य आदिके द्वारा सम्यक् विधानसे अर्चना की; तत्पश्चात् ब्रह्मा सुन्दर शय्यापर बैठकर विश्राम करने लगे। २४—२६। तब ऋषिने धीरे धीरे जागकर वहां धर्म्मव्रताको न देखकर रोषसे शाप दिया। २७। वह बोले, "मेरी बातकी अवहेला करके चरणसेवा त्यागकर तुम अन्य स्थानको चली गई, इसी पापसे तुम शिला हो जाओ"। २८। इस तरह शापसे ग्रसित धर्म्मव्रताने अपने स्वामीसे रोषपूर्व्वक कहा, "तुम्हारे सो जानेपर तुम्हारे पिता और गुरु ब्रह्मा यहां आये; जिन पिताकी पूजा तुम्हें उठकर करना चाहिये थी, तुम्हारी स्त्री अर्थात् मैंने वह काम किया, सो मेरा कोई भी अपराध नहीं है; पर तुमने मुझे विना

प्राप्स्यस्यसंशयं ॥ ३१ ॥ तं व्याकुलं पतिं दृष्ट्वा व्याकुला सा पतिव्रता। पतिव्रतात्वमाहात्म्यात् पत्युः शापं दधार सा ॥ ३२ ॥ नत्वा शयानं ब्रह्माणमग्निं प्रज्वाल्य चेन्धनैः। गार्हपत्ये स्थिता चक्रे तपः परमदुश्चरं ॥ ३३॥ पत्न्या शप्तो मरीचिस्तु तपस्तेपे सुदारुणं। पतिव्रतायास्तपसा मरीचेस्तपसा तथा ॥ ३४ ॥ सन्तापितं जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषं। इन्द्रादयश्च सन्तप्ता गतास्ते शरणं हरिं ॥ ३५ ॥ ऊचुः क्षीरोदधौ सुप्तं सन्तप्तास्तपसा हरे। पतिव्रतायास्तपसा त्रैलोक्यं रक्ष

दोष शाप दिया है, सो मैं भी तुमको प्रतिशाप देती हूं, हे नाथ! तुमको महेश्वरसे शाप मिलेगा, सन्देह नहीं है। २६—३१। वह अपने भर्त्ताको कातर देखकर आप स्वयं भी अत्यन्त व्याकुल हुई और पतिव्रता-माहात्म्यके हेतुसे पतिका शाप ग्रहण किया। ३२। पीछे ब्रह्माके पास जाकर और उन्हें सोता हुआ देखकर उसने प्रणाम किया और इन्धन द्वारा अग्नि जलाकर उसके बीच परम दुष्कर गार्हपत्य तपस्या करनेको प्रवृत्त हुई। ३३। रमणीद्वारा अभिशप्त मरीचि भी कठोर तपस्यामें रत हुए; उन दोनोंके तपोबलसे तीनो लोक सन्तापित हुए, इन्द्रादि लोकपाल श्रीहरिके शरणागत हुए। ३४—३५। वे लोग क्षीरसागरपर जाकर कहने लगे, हे हरे! हे केशव! पतिव्रताके तपोबलसे तीनो भुवनकी

केशव ॥ ३६ ॥ इन्द्रादीनां वचः श्रुत्वा विष्णुर्धर्म्मव्रतां ययौ। एतस्मिन्नेव काले तु प्रबुद्धो भगवानजः। जग्मुर्धर्म्मव्रतां देवा अग्निस्थां सहकेशवाः ॥ ३७ ॥ अग्निमध्ये तपः कर्त्तुं कस्याः शक्तिः पतिव्रते। त्वया कृतं तत् परमं सर्व्वलोकभयङ्करं ॥ ३८ ॥ वरं वरय धर्म्मज्ञे ह्यस्मत्तो यदभीप्सितम्। विष्णुादीनां वचः श्रुत्वा देवान् धर्म्मव्रताब्रवीत् ॥ ३९ ॥ भर्त्तृशाप-मशक्ताहं निवर्त्तयितुमोजसा ॥ दत्तो मरीचिना शापो मह्यं स व्यपगच्छतु ॥ ४० ॥ धर्म्मव्रतावचः श्रुत्वा प्रोचुरेतां सुराः पुनः। धर्म्मव्रते धर्म्मपत्नि शापोऽयं पर-

---

रक्षा कीजिये। ३६। इन्द्रादि देवताओंकी बात सुनकर विष्णु पतिव्रताके पास गये, तब ब्रह्मा भी जागे। हरिके साथ देवगण अग्निमध्यमें गत पतिव्रताको कहने लगे। ३७। हे पतिव्रते! अग्निके बीच तपस्या करनेकी तुमें छोड़कर और किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है; तुम्ही सर्व्वलोक-भयङ्कर यह दारुण तपस्या करती हो। ३८। हे धर्म्मज्ञे! हमारे पाससे वाञ्छित वर पाओ। यह बात सुनकर धर्म्मव्रताने विष्णु प्रभृति देवगणको कहा, मैं पतिका शाप निवारण करनेमें असमर्थ हूं, आप मरीचिके दिये हुए इस अभि-सम्पातको दूर कीजिये। देवगणने पुनर्वार कहा, हे धर्म्म-नन्दिनि धर्म्मव्रते! परम ऋषीश्वरने यह शाप दिया है, यह

सर्षिणा ॥ ४१ ॥ इत्तस्ते ननिराकर्त्तुं शक्यो देव-द्विजातिभिः । तस्मादन्यं वरं ब्रूहि यतो धर्मस्य संस्थितिः ॥ ४२ ॥ अत्रैहि त्रिषु लोकेषु वेदोक्तस्य शुभव्रते । विष्ण्वादीनां वचः श्रुत्वा देवान् धर्म्मव्रता-ब्रवीत् ॥ ४३ ॥ भर्त्तुः शापान्मोचयितुं न शक्ताश्च यदा-मराः । मह्यं वरं प्रयच्छध्वमेवम्विधमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ शिलाहं भविष्यामि ब्रह्माण्डे पावनी शुभा । नदीनदसरस्तीर्थदेवादिभ्योऽतिपावनी ॥ ४५ ॥ ऋष्या-दिभ्यो मुनिभ्यश्च मुख्यदेवेभ्य एव च । त्रैलोक्ये यानि लिङ्गानि व्यक्ताव्यक्तात्मकान्यपि ॥ तानि तिष्ठन्तु मद्देहे तीर्थरूपेण सर्व्वदा ॥ ४६ ॥ तीर्थान्यपि च सर्व्वाणि नद्यवप्रमुखास्तथा । तिष्ठन्तु देवाः सकला

दूर करनेकी शक्ति देवता वा ब्राह्मण किसीकी भी नहीं है ; सो हे शुभव्रते ! त्रिभुवनमें वेदोक्त धर्म्म स्थापन करनेके अर्थ और कोई वर मांगो । ४१—४२ । धर्म्मव्रताने कहा, यदि एक बारही आपलोग पतिके शापसे मुझे छुड़ानेमें असमर्थ हैं, तो मुझे इस प्रकारसे अत्युत्तम वर दीजिये,जिससे मैं शिला तो बनूं, पर ब्रह्माण्ड भरमें सबसे अधिक विशुद्ध और शुभ हूं ; नदी नद सरोवर तीर्थ देवता प्रभृतिसे भी अति पवित्र हूं ; ऋषिगण, मुनिगण, बड़े बड़े देवगण और त्रिभुवनमें जितने प्रकाशित और अप्रकाशित देवताओंके स्वरूप हैं, मेरे शरीरमें तीर्थ-

देव्यश्च मुनयस्तथा ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लक्षयित्वा पदं मयि। पञ्चाग्नयः कुमाराद्या बहुरूपेण संस्थिताः ॥ ४८ ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपेण पदरूपेण देवताः। शिलायां क्रोशमात्रेण मूर्त्तिरूपाः स्थिता भुवि ॥ ४९ ॥ तां दृष्ट्वा सर्व्वलोकस्य महापातकनाशिनीम्। पूतो धर्म्माधिकारी च श्राद्धकृद् ब्रह्मलोकभाक् ॥ ५० ॥ शिलास्थितेषु तीर्थेषु स्नात्वा कृत्वाथ तर्पणम्। श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते ॥ ५१ ॥ स्थास्यन्ति च मरिष्यन्ति यान्तु ब्रह्मपुरीं

रूपसे निरन्तर अधिष्ठान करें; नक्षत्रादि ज्योतिर्म्मण्डल, अनान्य समस्त तीर्थगण, देव देवी और ऋषिगण यहां आकर अवस्थान करें, विधि, विष्णु और रुद्र मेरे ऊपर चरणचिन्हका लक्षण करके स्थित होवें, पांचो अग्नि और कुमार आदि मुझमें वहुत रूप धरके अवस्थित रहें; भूमण्डलके बीच एक कोस परिमाण मेरी इस शिलामूर्त्तिमें देवतालोग मूर्त्ति, अमूर्त्ति अथवा चरणरूप धारण करके अवस्थान करें।४५—४६। महापापहारिणी यह शिलामूर्त्ति देखकर लोग पवित्र और धर्म्माधिकारी होंगे और यहां श्राद्ध करके ब्रह्मलोक पावेंगे।५०। इस शिलामें स्थित तीर्थगणमें स्नान तर्पण करके जिसका श्राद्धादि पिण्डदान किया जावेगा, वह ब्रह्मधाममें प्रस्थान करेगा।५१। लोग यहां ठहरकर अथवा मृत्यु पाकर ब्रह्म-

नराः। वाराणसी प्रयागश्च पुरुषोत्तमसंज्ञकम्॥ ५२ गङ्गासागरसंज्ञश्च नित्यं तिष्ठतु फल्गुनि। गदाधरा-धिष्ठितं तत् सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥ मुक्तिर्भवेत् मृता-नाञ्च बहूनां श्राद्धतः सदा॥ ५३॥ जरायुजाण्डजा वापि स्वेदजा वापि चोद्भिदः। त्यक्त्वा देहं शिला-यान्ते यान्तु विष्णुस्वरूपताम्॥ ५४॥ यथार्चिते हरौ सर्वे यज्ञाः पूर्णा भवन्ति हि। तथा श्राद्धं तर्पणञ्च स्नानञ्चाक्षयमस्त्विह॥ ५५॥ मम देहे सुरेशानां ये जपन्ति श्रुतादिकम्। अचिरेणापि ते सिद्धाः सिद्धि-भाजो भवन्तु वै॥ ५६॥ पितृणां कुलसाहस्रमात्मना सहितं नरः। श्राद्धादिना समुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद्-

---

पुरीको जावेंगे; काशी, प्रयाग, पुरुषोत्तम और गङ्गासागरके फल नित्य ही तीर्थमें स्थित रहें; गदाधर संयुक्त इस सर्व्वप्रधान तीर्थमें श्राद्ध करनेसे सदा ही मृत व्यक्तियोंका परित्राण बहुत प्रकारसे होगा। ५३। इस शिलामें जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज,—चारो प्रकारके प्राणी शरीर त्यागके विष्णुकी सारूप्य मुक्ति पावेंगे। ५४। हरिकी अर्चना होनेपर जिस प्रकार सर्व्वयज्ञ पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार यहां स्नान, तर्पण और श्राद्धसे अक्षय फल होगा। ५५। हे देवगण! मेरी इस शिलामयी देहमें कोई श्रुतादि जप करेगा, तो उसे शीघ्र ही सिद्धि मिलेगी। ५६। यहां श्राद्धादिके द्वारा लोग सहस्रकुल

ध्रुवम् ॥ ५७ ॥ यावत्यो हि सरित्श्रेष्ठा गङ्गाद्याश्च
कृशाः शुभाः। समुद्राद्याः सरोमुख्या मानसाद्याः सुरे-
श्वराः। नृणां श्राद्धं विदधतो मुक्तये निवसन्तु मे ॥५८
शरीरेण समायान्तु क्वचिन्नो यान्तु देवताः। एको
विष्णुस्त्रिधामूर्त्तिर्यावत् सङ्कीर्त्त्यते बुधैः ॥ ५९ ॥ ताव-
च्छिलायां सर्व्वाणि तीर्थानि सह दैवतैः। सदा
तिष्ठन्तु मुनयो गन्धर्व्वाणां गणाश्च ये ॥ सर्व्वदेवस्वरूपा
च नाम्नेयं देवरूपिणी। यावद्भवति ब्रह्माण्डं तावत्-
तिष्ठतु वै शिला ॥ ६० ॥ मम देहेऽश्मरूपे च ये
जपन्ति तपन्ति च। जुह्वत्यग्नौ च तेषां वै तदक्षय्योप-
तिष्ठताम् ॥ ६१ ॥ अक्षयन्तु भवेच्छ्राद्धं जपहोमतर्पा-

पितरोंके साथ स्वयं विष्णुधामको प्राप्त होंगे। ५७। हे सुरगण!
नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा प्रभृति और मानस आदि सरोवरसमूह
लोगोंकी श्राद्धकार्य्यमें मुक्तिदानके लिये मुझमें निरन्तर ही अव-
स्थान करेंगे। ५८। जबतक पण्डित लोग विष्णुकी तीनो मूर्त्ति-
योंका कीर्त्तन करेंगे, तबतक मुनिगण, गन्धर्व्वगण और यक्ष-
गण निज निज भार्य्याके साथ मेरी इस शिलामय देहमें स्थित
रहेंगे, यह शिला भी जबतक ब्रह्माण्ड रहेगा, तबतक स्थापित
रहेगी। ५९—६०। मेरे इस शरीरमें यज्ञ, तपस्या अथवा जप
वगैरह करनेसे अनन्त फल मिला करेगा। ६१। इस स्थानमें

सि च। शिलापर्व्वतरूपेण मयि तिष्ठत भो सुराः ॥६२
धर्म्मव्रतावचः श्रुत्वा देवाः प्रोचुः पतिव्रताम्। त्वया यत् प्रार्थितं सर्व्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ ६३ ॥ गयासुरस्य शिरसि भविष्यसि यदा स्थिरा। तदा पादादिरूपेण स्थास्यामस्त्वयि सुस्थिराः ॥ वरं शिलायै दत्वैवं तत्रैवान्तर्द्दधुः सुराः ॥ ६४ ॥

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवराहकल्पे गयामाहात्म्ये धर्म्मव्रतायाः वरोपलम्भनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्राद्ध जप, होम और तपस्या अक्षय होगी। हे सुरगण! यदि इस प्रकार हो, तो मैं पर्व्वतशिलाकी मूर्त्ति धारण करूंगी। ६२। तब देवताओंने कहा, "तुम्हारी प्रार्थना अवश्य ही सर्व्वप्रकारसे सुसिद्ध होगी। ६३। गयासुरको निश्चल करनेके लिये उसके शरीरपर जब तुम रखी जाओगी, तब चरणचिन्हादिके रूपसे तुममें हमलोग अधिष्ठान करेंगे। देवगण उस शिलाको इसी प्रकार वर देकर वहींपर अन्तर्धान हो गये। ६४।

तीसरा अध्याय समाप्त।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सनत्कुमार उवाच । वक्ष्ये शिलाया माहात्म्यं शृणु नारद मुक्तिदम् । यस्या गायन्ति देवाश्च माहात्म्यं मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥ शिला स्थिता पृथिव्यां सा देवरूपातिपावनी । विचित्राख्यं शिलातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥ तस्याः संस्पर्शनाल्लोकाः सर्वे हरिपुरं ययुः । शून्ये यमपुरे जाते यमो ब्रह्माणमागतः । ऊचे शिलास्पर्शनात्से ब्रह्मन् शून्या पुरी ह्यभूत् ॥३॥ अधिकारं गृहाण त्वं यमदण्डं पितामह ।

सनत्कुमार बोले, हे नारद ! मोक्षप्रद शिलाका माहात्म्य कीर्त्तन कर रहा हूं, सावधान हो जाओ। हे मुनिवरो ! इस शिलाका माहात्म्य देवता लोग भी कीर्त्तन किया करते हैं। १। अति पवित्र देवरूपिणी यह शिला भूतलमें स्थापित होकर विचित्र शिलातीर्थ नामसे त्रिभुवनमें प्रथित हुई। २। उसको स्पर्श करके लोग वैकुण्ठधाममें गमन करने लगे; इस प्रकारसे यमराज अपनी पुरीको शून्य देखकर ब्रह्मलोकमें गये और शिलास्पर्शके कारण निजपुरी शून्य होनेका विवरण ब्रह्माको अवगत कराके अपना अधिकार और यमदण्ड लौटा: देनेको उद्यत हुए। तब ब्रह्माने कहा, कि उक्त शिलाको अपने घरमें रखा करो, तब धर्मराजने उस शिलाको ले जाकर

यममूचे ततो ब्रह्मा स्वगृहे धारयस्व तां। ब्रह्मोक्तो धर्मराजस्तु गृहे तां समधारयत् ॥ ४ ॥ यमोऽधिकारं स्वं चक्रे पापिनां शासनादिकं। एवंविधा गुरुतरा शिला जगति विश्रुता ॥ ५ ॥ यथा ब्रह्मा यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः। ब्रह्माण्डे च यथा मेरुस्तथेयं देवरूपिणी ॥ ६ ॥ गयासुरस्य शिरसि गुरुत्वाद्धारिता यतः। पवित्रयोर्द्वयोर्योगः पितृणां मोक्षदायकः ॥ ७ ॥ गयासुरशिलायोगे ह्यश्वमेधमजोऽकरोत्। भागार्थमागतान् दृष्ट्वा विष्णादीनब्रवीच्छिला ॥ ८ ॥ शिलास्थितिप्रतिज्ञां तु कुर्व्वन्तु पितृमुक्तये। तथेत्युक्त्वा शिलायान्ते देवा विष्ण्वादयः स्थिताः ॥ ९ ॥

अपने घरमें रखा। ३—४। पीछे यमराज पातकियोंके शासन आदिका स्वकार्य्य यथानियमसे सम्पादन करने लगे; इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु रुद्र अथवा सुमेरु पर्व्वतकी भांति देवरूपिणी अति भारी वह शिला धरातलपर प्रथित हुई। ५—६। इसका अतीव भार जब गयासुरके शिरमें स्थापित हुआ, तब ये दो अति विशुद्ध पदार्थ संयुक्त होकर पितरोंके मोक्षदाता हुए। ८। गयासुरके माथेपर शिला संयुक्त होनेसे ब्रह्माने उसमें अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया; तब विष्णु प्रभृति देवता अपना अपना भाग ग्रहण करनेको उपस्थित हुए; शिलाने पितरोंकी मुक्तिके वशसे वहां ठहरनेके लिये उनकी पूर्व्व प्रतिज्ञा स्मरण कराई,

शिलारूपेण मूर्त्ताश्च पदरूपेण देवताः। व्यक्ताव्यक्त-स्वरूपेण स्थिताः सर्व्वाः प्रतिच्छया ॥ १० ॥ दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु शिला यस्माच्च संस्थिता। तस्मात् स मुण्डपृष्ठाद्रिः पितृणां ब्रह्मलोकदः ॥ ११ ॥ आच्छा-दितः शिलापादः प्रभासेनाद्रिणा यतः। भासितो भास्करेणेति प्रभासः परिकीर्त्तितः ॥ १२ ॥ प्रभा-साद्रिं तु निर्भिद्य शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः। तस्मात् चेवेश्वरो जातः प्रभासेशः प्रकीर्त्तितः ॥१३॥ शिलाङ्गु-ष्ठैकदेशो यः सा च प्रेतशिला स्मृता। पिण्डप्रदानात्त-स्यां तु प्रेतत्वान्मुच्यते नरः ॥ १४ ॥ महानदी प्रभासस्य

तब विष्णु आदि देवगण वहां रहने लगे। ८—९। देवगणोंमेंसे किसीने शिलामूर्त्ति, किसीने प्रतिमूर्त्ति, किसीने चरणचिन्ह-मूर्त्ति धारण करके प्रकट अथवा अप्रकट रूपसे वहां अधिष्ठान किया। १०। दैत्यके शिरमें यह शिला रखी गई और पित-रोंको ब्रह्मलोक देनेवाली हुई—इसीसे इसका नाम मुण्डपृष्ठादि हुआ। ११। इस शिलाका चरणप्रान्त पर्व्वतद्वारा आक्रान्त हुआ और वह पर्व्वत सूर्य्यकी भांति चमकने लगा, इसीसे उसे प्रभास गिरि कहते हैं। १२। इस प्रभास गिरिको भेद करके जहां शिलाका अङ्गुष्ठ निकला है, वहांके देवताको प्रभासे-श्वर कहते हैं। १३। शिलाङ्गुष्ठके एक स्थानका नाम प्रेतशिला है; वहां पिण्डदान करनेसे लोगोंका प्रेतत्व दूर होता है।१४।

सङ्गमे स्नानकृन्नरः। रामो देव्या सह स्नातो रामतीर्थं ततः स्मृतं ॥ १५ ॥ प्रार्थितोऽत्र महानद्या राम स्नातो भवेति च। रामतीर्थं ततो भूत्वा त्रिषु लोकेषु पावनं ॥ १६ ॥ जन्मान्तरशतं साग्रं यत् कृतं दुष्कृतं मया। तत् सर्व्वं विलयं यातु रामतीर्थाभिषेचनात् ॥ १७ ॥ मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्व्वीत मानवः। रामतीर्थे पिण्डदस्तु विष्णुलोकं प्रयात्यसौ। तथेत्युक्त्वा स्थितो रामः सीतया भरताग्रजः ॥ १८ ॥ राम राम महाबाहो देवानामभयङ्कर। त्वां नमस्येऽत्र देवेशं मम नश्यतु पातकं ॥ १९ ॥ मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा

इस गिरिसे उत्पन्न महानदीके सङ्गममें लोगोंको स्नान करना चाहिये। इस स्थानमें श्रीरामचन्द्रने जानकीके साथ स्नान किया था, इसीसे इसका नाम रामतीर्थ हुआ है। १५। महानदीकी प्रार्थनासे श्रीरामने यहां स्नान किया, इसीसे इसका नाम रामतीर्थ पड़ा है, तीनो लोकोंमें यह अति पवित्र है।१६। सैकड़ों जन्मके किये हुए पाप रामतीर्थमें स्नान करनेसे दूर हों; ऐसा कहकर जो लोग राम तीर्थमें स्नान और श्राद्धादि पिण्ड-दान करते हैं, वे निःसन्देह विष्णुके धामको जाते हैं। महानदीकी ऐसी प्रार्थनासे भरतके बड़े भाई रामने तथास्तु कहके सीताके साथ वहां अवस्थान किया। ११—१८। वहांपर स्थित राममूर्त्तिके नमस्कारका मन्त्र यह है,—"हे राम! हे महा-

श्राद्धं कुर्य्यात् सपिण्डकं। प्रेतत्वात्तस्य पितरो विमुक्ताः पितृतां ययुः॥ २०॥ आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च। पापं नाशय मे देव मनोवाक्कायकर्म्मजं॥ २१॥ नमस्कृत्य प्रभासेशं भास्करानां शिवं व्रजेत्। तत्र यम्मुं नमस्कृत्य कुर्य्याद्दयमवलिं ततः॥ २२॥ रामे वनं गते शैलमागत्य भरतः स्थितः। पितृपिण्डादिकं कृत्वा रामं संस्थाप्य तत्र च॥ २३॥ रामं सीतां लक्ष्मणञ्च मुनीन् स्थापितवान् प्रभुः। भरतस्याश्रमे पुण्ये नित्यं पुण्यतमैर्वृतं। मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते सर्व्वमानुषैः॥ २४॥ स्थापितं धर्म्मसर्व्वस्वं

वाले राम! तुम देवताओंके भयके हरनेवाले हो! हे सर्व्वश्रेष्ठ! तुमको नमस्कार करते हैं, मेरा पातक दूर करो। १६। यहां उक्त मन्त्रसे स्नान करके श्राद्धादि पिण्डदान करनेसे पितरोंका प्रेतत्वनाश होता है और वे लोग पितृलोकमें वास करते हैं। २०। हे देवेश! तुम जलस्वरूप हो, सब प्रकारकी ज्योतियोंके भी प्रकाशक हो। हे देव! हमारे त्रिविध पापनाशक हो इस मन्त्रसे प्रभासेश्वर शिवको नमस्कार करना होगा। पीछे वहांसे जाकर यमराजको बलि देना होगा। २१—२२। रामचन्द्रके वनवास करनेपर उनके भाई भरतने यहां आकर पितरोंका पिण्ड आदि समाप्त करके रामकी मूर्त्ति स्थापित की थी।

लोकस्यास्य निदर्शनात्। मतङ्गस्य पदे श्राद्धी सर्व्वां-स्तारयते पितॄन्॥ २५॥ रामतीर्थे नरः स्नात्वा रामं सीतां नमस्य च। रामेश्वरं प्रणम्याथ न देही जायते पुनः॥ २६॥ शिलाया जघनं भूयः समाक्रान्तं नगेन तु। धर्म्मराजेन संप्रोक्तो न गच्छेति नगः स्मृतः॥ २७॥ यमराज-धर्म्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ। ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे॥ २८॥ द्वौ श्वानौ श्यामशवलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।

उन्होंने यहां निरन्तर पुण्यवान् लोगोंके साथ वास करते हुए सीता लच्मण और बहुतेरे ऋषियोंको संस्थापन किया। लोगोंके निदर्शन करानेके लिये उन्होंने यहां मनुष्योंके दर्शनको धर्म्मका सर्व्वस्व मतङ्गका पदचिन्ह स्थापन किया। इस मतङ्गपदमें श्राद्ध करनेसे पितरोंका उद्धार होता है। रामतीर्थमें स्नान करते हुए राम और सीताकी अर्चना करके रामेश्वरको नमस्कार करनेसे फिर देह परिग्रह करना नहीं होता है। २३—२६। गयासुरको निश्चल करनेके लिये शिलाके जघनदेशमें धर्म्मराजद्वारा जो गिरि स्थापित हुआ था, उसका नाम नगपर्व्वत है। २७। इस स्थानमें गयासुरको निश्चल रखनेके लिये यमराज और धर्म्मराज विराजते हैं, पितरोंकी मुक्तिके लिये उनके उद्देश्यसे यमराजको बलि देता

ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥ २९ ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्यनैर्ऋत्यसंस्थिताः। वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितं ॥ ३० ॥ यमोऽसि यमदूतोऽसि वायसोऽसि महाबल। सप्तजन्मकृतं पापं बलिं भुक्त्वा विनाशय ॥ ३१ ॥ शिलाया दक्षिणे हस्ते स्थापितः कुण्डपर्व्वतः। तत्र श्राद्धादिना सर्व्वान् पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ३२ ॥ तिमिरादित्य ईशानमर्गाविति महेश्वराः। वह्निद्वौ वरुणौ रुद्राश्चत्वारः पितृमोक्षदाः ॥ ३३ ॥ भरताश्रममासाद्य तान्नमेत् पूजयेन्नरः।

हूं। २८। वैवस्वत वंशमें उत्पन्न श्याम और शवल नामके दोनों कुत्तोंके लिये मैं यह पिण्ड देता हूं; वे लोग मेरी इस श्राद्ध-क्रियाका विघ्न दूर करें। २९। पूर्व्व, पश्चिम, वायु, दक्षिण और नैर्ऋत्य दिशामें स्थित काकगण भूमितलमें दिये हुए मेरे इस पिण्डको ग्रहण करें। ३०। हे यम! यमदूत और वायसगण! आपलोग महाबली हैं; मेरे दिये हुए पिण्डको लेकर मेरे सात-जन्मके पाप दूर करो। ३१। इस शिलाके दक्षिण हस्तमें कुण्ड-गिरि स्थापित है, यहां श्राद्धादि करनेसे समस्त पितरोंको ब्रह्म-लोककी प्राप्ति होती है। ३२। तिमिरादित्य, ईशान और गर्ग यहांपर महेश्वर हैं; अग्नि, वरुणयुगल और चारो रुद्र इन सब देवताओंकी पूजासे पितरोंकी मोक्ष होती है। ३३। भरता-

पापेभ्यश्चोपपापेभ्यो मुच्यते पितृभिः सह ॥ ३४ ॥ यत्र कुत्रापि देवर्षे भरतस्याश्रमे नरः । स्नातः श्राद्धाह्निकं कुर्य्यात्तत्कल्पेऽपि न हीयते ॥ ३५ ॥ गयायां चाक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । सर्व्वमानन्त्यमाह्रुवै यद्दत्तं भरताश्रमे ॥३६॥ चतुर्युगस्वरूपेण चतस्रो रविमूर्त्तयः । दृष्टाः स्पृष्टाः पूजितास्ताः पितॄणां मुक्तिदायकाः ॥३७॥ मुक्तिर्वामन इत्येव तारकाख्यो विधिः परः । संसारार्णवमग्नानां नावावितौ सुरेश्वरौ । तारकं ब्रह्म विश्वेषां मृतानां जीवतामिदम् ॥ ३८ ॥ त्रिविक्रमञ्च ब्रह्माणं

श्रममें जाकर इनको प्रणाम करनेसे लोग अपने पितरोंके साथ पातक और उपपातकसे छूट जाते है। ३४। हे देवर्षे! लोग भरताश्रममें जाकर उसके चाहे जौनसे स्थानमें स्नान करते हुए पिण्डादि देकर एक कल्प भरसे भी अधिक कालतक फल भोगते हैं।३५। ऐसा प्रसिद्ध है, कि गयाके बीच भरताश्रममें श्राद्ध जप होम तपस्या और दानादि कार्य्यमें अक्षय और अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। ३६। इस स्थानमें चार युगके स्वरूपोंमें सूर्य्य नारायणकी चार मूर्त्तियां हैं; उनका स्पर्श और दर्शनअर्चना करनेसे पितरोंका त्राण हुआ करता है। ३७। इस स्थानमें वामन और तारक नामसे ब्रह्माकी दो मूर्त्तिया हैं, वे भवसागरमें डूबे हुए मृत जीवोंके उद्धारके लिये नौकास्वरूप,

यः पश्येत् पुरुषोत्तमम्। पितृभिः सह धर्म्मात्मा स याति परमां गतिम् ॥ ३९ ॥ शिलाया वामपादेऽपि तथाभ्युदन्तको गिरिः। यः पितुः पिण्डदस्तत्र पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ४० ॥ नैमिषारण्यपार्श्वे तु ईजे ब्रह्मा सुरैः सह। मुख्यसंज्ञं हि तत्तीर्थं देवास्तत्र पदे स्थिताः ॥ ४१ ॥ तेषु तेषु पदेष्वेव तीर्थेषु मुनिसत्तम यत्किञ्चिदशुभं कर्म्म तत् प्रणश्यति नारद ॥ ४२ ॥ तन्नैमिषवनं पुण्यं सेवितं पुण्यपौरुषैः। तत्र व्यासः शुकः पैलः कण्वो वेधाः शिवो हरिः। तेषां दर्शन-मात्रेण मुच्यते पातकैर्नरः ॥ ४३ ॥ वामहस्ते शिला-

---

हैं। ३८। इस स्थानमें त्रिविक्रम और और पुरुषोत्तम नामक ब्रह्माको देखकर पितरोंके साथ मुक्ति होती है। ३९। इस धर्म्मशिलाके वाएं पांवमें अभ्युदन्तक पर्व्वत है, इस स्थानमें पिण्डदान करनेसे पितर ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ४०। यहां नैमिष नामक एक वनके पास ब्रह्माने देवगणके साथ यज्ञ किया था, उसका नाम मुख्य तीर्थ है, वहांपर देवता लोग चरणचिन्हके रूपसे स्थित है। ४१। हे मुनिश्रेष्ठ नारद! इन सब तीर्थोंके चरणचिन्हसे लोगोंके सब अशुभ कर्म्म विनष्ट होते हैं। ४२। इस नैमिषारण्य काननमें व्यास, शुक, पैल, कण्व प्रभृति ऋषि और ब्रह्मा विष्णु एवं महेश्वर अवस्थान करते हैं, लोग उनके

यास्तु तथा चोद्यन्तको गिरिः। स पर्व्वतः समानीतो ह्यगस्त्येन महात्मना। तत्र ब्रह्मा हरश्चैव तपश्चोग्रञ्च चक्रतुः॥ ४४॥ तत्रागस्त्यस्य हि वरं कुण्डं त्रैलोक्य-दुर्लभं। यत्र मुन्यष्टकः सिद्धः तपस्तप्त्वा शिवं गतः। कुण्डे मुन्यष्टकं नत्वा पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत्॥ ४५॥ अगस्त्येनानाय्य देवर्षे उदयाद्रेर्महात्मना। शिलाया वामहस्तेऽपि स्थापितो गिरिराट् शुभः। वादित्राद्यै-र्दिव्यगीतैराढ्यो वादित्रको गिरिः॥ ४६॥ तत्र विद्याधरो नाम गन्धर्व्वाप्सरसां गणैः। समेतोऽद्यापि वादित्र गीतानि बहु गायति॥ ४७॥ सोहनश्च मुनी-

---

दर्शन करके पापसे मुक्त होते हैं। ४३। महात्मा अगस्त्यद्वारा लाये हुए उद्यन्तक पर्व्वत धर्म्मशिलाके बांये हाथमें है। यहां ब्रह्मा और शिवने कठोर तपस्या की थी। ४४। यहां त्रिभुवनदुर्लभ सर्व्वप्रधान अगस्त्यकुण्ड है; वहां आठ ऋषीश्वर तपस्यासे सिद्ध होकर शिवलोकको पधारे हैं। इस कुण्डमें आठ मुनीश्वरोंको नमस्कार करनेसे पितरलोग ब्रह्मपुरमें जाते हैं। ४५। हे देवर्षे! इस कल्याणमय पर्व्वतश्रेष्ठको अगस्त्य ऋषिने उदयगिरिसे लाकर धर्म्मशिलाके बांयें हाथमें स्थापन किया है, इस स्थानमें बहुतसे वाद्य आदिका शब्द होनेसे इसे वादित्रगिरि भी कहते हैं। ४६। वहां विद्याधर नामके देवता

धन्य शैलुजा मोहनोत्तमः। पर्व्वतो नारदध्यानी संगीतिः पुष्पदन्तकः। हाहा हूहू-प्रभृतयो गीतनादं प्रचक्रिरे॥ ४८॥ तथा चित्ररथो नाम सर्व्वगन्धर्व्व-संहृतः। गायन्ति मधुराण्येव गीतान्यद्रौ महोत्सवे॥४९ अतः स पर्व्वतो देवैः सेव्यतेऽद्यापि नित्यशः। धर्म्मश-स्तत्र देवेशो हरो भस्माङ्गरागवान्॥ ५०॥ पार्व्वत्या सहितो रुद्रः पर्व्वते गीतनादिते। मोदते पूजितो ध्येयः पितॄणां परमा गतिः॥ ५१॥ गयायां परमात्मा हि गोपतिर्वा गदाधरः। हीयते वैष्णवी माया तथा

गन्धर्व्व और अप्सराओंके साथ नाना प्रकार गीत और वाद्यका कलरव करते है। ४७। मोहन, सुनीथ, शैलुज, मोहनोत्तम, पर्व्वत, नारदध्यानी, सङ्गीति, पुष्पदन्तक, हाहा, हूहू प्रभृति गन्धर्व्वप्रवर गीतकी ध्वनि करते हैं। ४८। चित्ररथ सर्व्व-गन्धर्व्वोंके साथ महोत्सवके समयमें इस गिरिपर मधुर स्वरसे गान किया करते है। ४६। इस लिये आज भी इस पर्व्वतपर देवता लोग हर रोज आया करते है। धर्म्मशिलापर स्थित इस गीतनादित पर्व्वतपर देवश्रेष्ठ हर पार्व्वतीके साथ अङ्गमें भस्म मलकर विराजते हैं; उनको नमस्कार करके उनका ध्यान और उनकी अर्चना करनेसे पितरोंको परम गति मिलती है। ५०—५१। गयाधाममें ब्रह्माण्डनाथ परमात्मा गदाधरके

रुद्रार्च्चया मुने ॥ ५२ ॥ शिलाया दक्षिणे हस्ते भस्म-कूटो गिरिर्धृतः। धर्म्मराजेन तत्रास्ते अगस्त्यः सह भार्य्यया ॥ ५३ ॥ अगस्त्यस्य पदे स्नातः पिण्डदो ब्रह्म-लोकगः ब्रह्मणस्तु वरं लेभे माहात्म्यं भुवि दुर्लभम्। लोपामुद्रां तथा भार्य्यां पितृणां परमां गतिम् ॥ ५४ ॥ तत्रागस्त्येश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया। अगस्त्यञ्च सभार्य्यञ्च पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ५५ ॥ दक्षिणाञ्च तपस्तेपे शीताद्रेर्दक्षिणे गिरौ ॥ ५६ ॥ वटो वटेश्वर-स्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः। तदग्रे रुक्मिणीकुण्डं

रूपसे स्थित है; हे नारद मुनीश्वर! रुद्रकी पूजाकी भांति इस देवताकी अर्चा करनेमे वैष्णवी माया नष्ट होती है। ५२। इस धर्म्मशिलाके दाहिने हाथमें धर्म्मराजद्वारा भस्मकूटनामक गिरि स्थापित हुआ है, वहां स्त्रीके साथ अगस्त्य मुनि रहते हैं। स्नानके अन्तमें अगस्त्यके पदपर पिण्ड दान करनेसे ब्रह्म-लोक को जाते हैं। यहींपर अगस्त्य मुनिने ब्रह्मासे धरणी-दुर्लभ वर, माहात्म्य, लोपामुद्रा नाम्नी नारी और पितरोंकी परम गति पाई थी। यहां अगस्त्येश्वरके दर्शन करनेसे ब्रह्म-हत्याका पाप ध्वंस होता है। स्त्रीके साथ अगस्त्यको निरख-कर पितरलोग ब्रह्मलोकको जाते है। ५३—५५। इसके दक्षिण ओर शीताद्रि नामक पर्व्वतमें इन्होंने तपस्या की थी। ५६।

पश्चिमे कपिला नदी ॥ ५७ ॥ कपिलेशो नदीतीरे अमासोमसमागमे। कपिलायां नरः स्नात्वा कपिलेशं समर्च्य च। कृते श्राद्धे पिण्डदाने पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥५८॥ अग्निधारा गिरिवरा-दागतोद्यन्तकादनु। तत्र सारस्वतं कुण्डं सरस्वत्या प्रकल्पितं ॥ ५९ ॥ शुक्रस्तत्र सुतैः सार्द्धं षण्डामार्कादिभिः प्रभुः। तत्र तत्र मुनीन्द्राणां पदेषु मुनिसत्तम। श्राद्धपिण्डादिकृत् स्नातः पितॄंस्तारयते नरः ॥ ६० ॥ शिलाया वामहस्तेऽपि गृध्रकूटो गिरिस्थितः। गृध्ररूपेण संसिद्धा-स्तपस्तप्त्वा

वहां अक्षयवट, वटेश्वर शिव और प्रपितामह नामक ब्रह्मा विराजित हैं। इसके दक्षिणमें रुक्मिणीकुण्ड और पश्चिममें कपिला नदी है। ५७। अमावस्यायुक्त सोमवारमें इस नदीके तटपर कपिलेश महादेवको श्राद्धादि पिण्डदान करनेसे पितरोंको मुक्ति होती है। ५८। उद्यन्तक गिरिसे अग्निधारा नदी आई है; वहां सरस्वती देवीके द्वारा सारस्वत नामक कुण्ड प्रतिष्ठित है। ५९। वहां षण्डामर्क आदि पुत्रोंके साथ शुक्राचार्य्य विराजते हैं। इस सारस्वत कुण्डमें स्नानःऔर सरस्वती देवीकी अर्चना और शुक्रादि ऋषियोंके पदचिन्हमें श्राद्धादि पिण्ड दान करनेसे लोगोंके पितर तर जाते हैं। ६०। धर्म्मशिलाके वांये हाथमें गृध्रकूट नामक पर्व्वत है; वहां मह-

मंद्रर्षयः ॥ ६१ ॥ अतो गिरिर्गृध्रकूट-स्तत्र गृध्रेश्वरः स्थितः। दृष्ट्वा गृध्रेश्वरं नत्वा यायात् शम्भोः पदं नरः ॥ ६२ ॥ तत्र गृध्रे गुहायाञ्च पिण्डदो शिवलोक-भाक्। तत्र गृध्रे वटं नत्वा प्राप्तकामी दिवं व्रजेत् ॥ ६३॥ ऋणमोचं पापमोचं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत्। शूल-क्षेत्रञ्च तत्रास्ते पिण्डदः स्वर्नयेत् पितॄन् ॥ ६४ ॥ आदि-पालेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदरं। तत्रास्ते गज-रूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः। तं दृष्ट्वा मुच्यतेविघ्नैः पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ६५ ॥ नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य

षियोंने गृध्ररूप धारण करके तपस्या की थी, इसीसे उस पर्व्व-तका नाम गृध्रकूल हो गया है। यहां गृध्रेश्वर नामक शिव हैं, उनको दर्शन और नमस्कार करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। उसी गृध्र पर्व्वतकी गुफामें पिण्डदान करनेसे भी शिवलोकमें गमन होता है। यहां वटवृक्षको नमस्कार करनेसे मनोरथ सिद्ध होकर स्वर्ग मिलता है। ६३। ऋणमोच और पापमोच नामक दो शिवोंके दर्शनसे शिवलोक मिलता है। यहां शूलक्षेत्र नामक स्थानमें पिण्ड दान करनेसे पितरोंको स्वर्ग लाभ होता है। ६४। धर्म्मशिलाके उदरके ऊपर आदिपाल नामक पर्व्वत है, वहां विघ्नेश विघ्ननाशन हस्तीरूपसे स्थित हैं, उनके दर्शन करके विघ्नोंसे छुटकारा मिलता है और पित॰

देवदारुवनं त्वभूत्। मुण्डपृष्ठारविन्दाद्री दृष्ट्वा पापं विनाशयेत्। गयानाभौ सुषुम्नायां पिण्डदः स्वर्नयेत् पितृन्॥ ६६॥ शिलाया वामपादे तु स्थापितः प्रेत-पर्व्वतः। धर्म्मराजेन पापेभ्यो गिरिः प्रेतशिलाह्वयः॥ ६७॥ पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पापभारतः। गतः शिलायाः संसर्गात् प्रेतकूटः पवित्रताम्॥ ६८॥ प्रेतकुण्डस्य तत्रास्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः। तत्र पिण्डादिकं दत्त्वा प्रेतत्वान्मोचयेत् पितृन्॥ ६९॥ पृथक् स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण,एव ते। श्राद्धादि-कारिणां नृणां तीर्थे पितृविमुक्तये। प्रेता धानुष्क-

---

रोंको ब्रह्मलोक प्राप्त होताहै। ६५। गयासुरके शिरपर स्थापित मुण्डपृष्ठ नामक धर्म्मशिलाके नितम्ब देशमें देवदारुवन है, वहां मुण्डपृष्ठ और अरविन्द गिरिका दर्शन करनेसे पाप दूर होता है। गयाके मध्यस्थलमें सुषुम्ना नामक स्थानमें पिण्ड पारनेसे पितरोंको स्वर्ग मिलता है। ६६। धर्म्मशिलाके बांयें पाददेशमें धर्म्मराजने प्रेतशिला नामक पर्व्वत स्थापन किया है, यह प्रेत-शिला पापमय थी। ६७। पापके बोझसे धर्म्मशिलाने इस प्रेत-शिलाको पांवकी ठोकरसे दूर फेंक दिया था, पर उस धर्म्म-शिलाके संसर्गहीसे प्रेतशिला पवित्रताको प्राप्त हुई। ६८। यहां प्रेतकुण्डके पास देवता लोग चरणचिन्ह धारण करके रहे

रूपेण करग्रहणकारकाः ॥ ७० ॥ शिलासमीपे ये विप्राः प्रेतरूपा भयानकाः। सर्व्वे ते यमलोकात्तु पृथिव्यां पर्य्यटन्ति वै ॥ ७१ ॥ पादाङ्किता मुण्डपृष्ठा महादेवनिवासिनीम्। तां दृष्ट्वा सर्व्वलोकाश्च मुक्ताः पापोपपातकैः ॥ ७२ ॥ गयाशिरसि पुण्ये च सर्व्वपापैर्विवर्ज्जिते। प्रेतादिवर्ज्जितं यस्मात्ततोऽतिपावनं वरम् ॥ ७३ ॥ कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्। च्यवनस्याश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनःपुना ॥ ७४ ॥

हैं, वहां पिण्डादि दान करनेसे पितरोंका प्रेतत्व दूर होता है। ६६। पितरोंके मुक्ति देनेवाले इस तीर्थमें न्यारे न्यारे स्थानोंपर प्रेत लोग नाना मूर्त्तियां धारण करके धनुर्धरके रूपमें हाथ पकड़ लेनेके लिये आड़में विघ्न करते हैं। ७०। प्रेतशिलाके पास जितने ब्राह्मण दिखाई देते हैं, वे लोग बड़े बड़े भयङ्कर प्रेत हैं, वे लोग यमलोकसे आकर भूमिमें ब्राह्मणरूपसे विचरते हैं। ७१। पदचिन्हद्वारा विराजित मुण्डपृष्ठ पर्व्वतपर महेश्वर रहते हैं, उनके दर्शन करनेहीसे लोगोंके पाप और उपपाप दूर होते हैं। ७२। पवित्र गयासुरके शिरमें स्थापित सब पापोंसे रहित और प्रेतादिसे वर्जित रहकर धर्म्मशिला अति पवित्र स्थान है। ७३। कीकट देशमें गया पवित्र स्थान है, राजगृहवन पवित्र स्थान है, च्यवन ऋषिका

वैकुण्ठो लोहदण्डश्च गृध्रकूटश्च शोणकः। तत्र श्राद्धादिना सर्व्वान् पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ७५ ॥ क्रौञ्चरूपेण हि मुनिर्मुण्डपृष्ठे तपोऽकरोत्। तस्य पादाङ्कितो यस्मात् क्रौञ्चपादस्ततः स्मृतः ॥ ७६ ॥ स्नातो जलाशये तत्र नयेत् स्वर्गं स्वकं कुलम्। बलिः काकशिलायाञ्च काकेभ्य ऋणमोचनः ॥ ७७ ॥ मुण्डपृष्ठस्य शाने हि लोमशो लोमहर्षणः। द्वावेतौ परमं तप्त्वा तपःसिद्धिं पराङ्गतौ ॥ ७८ ॥ आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा लोमशेन महानदी। सारावती वेत्रवती चन्द्रभागा सरस्वती ॥ ७९ ॥ कावेरी सिन्धू रेवा च चन्दना च

आश्रम पवित्र है और पुनःपुना नदी पवित्र है। ७४। वैकुण्ठ, लोहदण्ड और गृध्रकूट एवं शोण नदीमें श्राद्धादि क्रियाद्वारा पितरोंको ब्रह्मधाममें पहुंचावे। ७५। मुण्डपृष्ठमें किसी ऋषीश्वरने क्रौञ्चपक्षीका रूप धारण करके तपस्या की थी, उनके चरणसे चिन्हित होनेके कारण वह स्थान क्रौञ्चपादके नामसे प्रसिद्ध है। ७६। यहांके जलाशयमें स्नान करनेसे अपने कुलको स्वर्गमें पहुंचावे और काकशिलामें पिण्ड देनेसे पितरोंको काकगणके ऋणसे मुक्ति मिलती है। ७७। मुण्डपृष्ठ पर्व्वतके शिखरपर लोमश और लोमहर्षण नामक दो मुनीश्वरोंने कठोर तपस्या करके सिद्धि पाई थी। ७८। सारावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा

सरिद्वरा। वाशिष्ठी सरयूर्गङ्गा यमुना गण्डकीन्दिरा ॥ ८० ॥ महावैतरणी नाम्ना निश्चरा च दिवौकसः। सारव्यलकनन्दा च उदीची कनकाह्वया ॥ ८१ ॥ कौशिकी ब्रह्मदा ज्येष्ठा सर्व्वस्याघविमोचिनी। कृष्णावेणा चर्म्मण्वती द्वे नद्यौ मुक्तिदायिके ॥ ८२ ॥ आहूता सरितां श्रेष्ठा लोमहर्षेण साहसात्। तपसस्तु प्रभावेण नर्म्मदा मुनिपुङ्गव। तासु सर्व्वासु यः स्नात्वा पिण्डदः स्वर्नयेत् पितॄन् ॥ ८३ ॥ ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद् यस्तु मानवः। परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो

सरस्वती, कावेरी, सिन्धु, रेवा, सरिद्वरा, चन्दना, वाशिष्ठी सरयू, गङ्गा, यमुना, गण्डकी, इन्दिरा, महावैतरणी, निश्चरा, स्वर्गवासियोंकी नदी, सारवी, अलकनन्दा, उदीची, कनका, कौशिकी, ब्रह्मदा, सर्व्वपापनाशिनी ज्येष्ठा, सर्व्व लोकके पापका विनाश करनेवाली कृष्णावेणा और चर्म्मण्वती नाम्नी नदियां— विशेषकर पिछली दो नदियां मुक्तिकी देनेवाली हैं। ये सब नदियां लोमहर्ष मुनिद्वारा बड़े साहससे बुलाई गई हैं।७६—८२। हे मुनिश्रेष्ठनारद! लोमहर्षणने तपके प्रभावसे नर्म्मदा नदीको बुलाया था; इन सब नदियोंमें स्नानपूर्व्वक पिण्डदान करनेसे पितरोंको स्वर्गप्राप्ति होती है। ८३। लोग ब्रह्मयोनिमें प्रवेश करके फिर बाहर निकल आनेपर इस लोकमें

योनिसङ्कटात्॥ ८४॥ निश्चरायां पुष्करिण्यां स्नातः श्राद्धादिकं नरः। कुर्य्यात क्रौञ्चपदे दिव्ये नियमाद्दासरत्रयम्। सर्व्वान् पितॄन् नयेत् स्वर्गं पञ्चपापिन एव च ॥८५॥ जनार्द्दनो भस्मकूटे तस्य हस्ते तु पिण्डदः। आत्मनोऽप्यथवान्येषां सव्येनापि तिलैर्व्विना। जीवतां दधिसंमिश्रं सर्व्वे ते विष्णुलोकगाः॥ ८६॥ यस्तु पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्द्दन। यमुद्दिश्य त्वया देयस्तस्मिन् पिण्डो मृते प्रभो॥ ८७॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्द्दन। अन्तकाले गते मह्यं

योनिके सङ्कटसे मुक्त होकर परम ब्रह्मको पाते हैं। ८४। निश्चरा पुष्करिणीमें स्नान करके तीन दिनतक यथाविधि क्रौञ्चपादमें श्राद्धादि पिण्डदान करनेसे पञ्चपापी लोग भी समस्त पितरोंको स्वर्गमें पहुंचाते हैं। ८५। भस्मकूट गिरिमें जनार्दन हैं, उनके बांये हाथमें तिल विना दधिमिश्रित पिण्ड अपने अथवा और किसी जीवित व्यक्तिके उद्देश्यसे देनेसे उसको विष्णुधाम प्राप्त होता है। ८६। उक्त पिण्डदानका मन्त्र है,—हे जनार्द्दन। मैं जिसके लिये तुम्हारे हाथमें यह पिण्ड देता हूं, हे प्रभो! उस व्यक्तिके मरनेपर तुम उसके उद्देश्यसे यह पिण्ड देना॥ ८७॥ हे जनार्द्दन! तुम्हारे हाथमें मैं यह पिण्ड देता हूं; मेरे मरनेपर तुम गयाशिरमें

त्वया देयो गयाशिरे॥ ८८॥ जनार्द्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृमोक्षद। पितृपते नमस्ते तु नमस्ते पितृरूपिणे॥८९ गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्द्दनः। तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्॥ ९०॥ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचक। लक्ष्मीकान्त नमस्ते तु पितॄणां मोक्षदो भव॥ ९१॥ वामजानु सुसंपात्य नत्वा भीमो जनार्द्दनम्। श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिः सह धर्म्मात्मा कुशानाश्च मतेन च॥ ९२॥ शिलायां व्यक्तरूपेण व्यक्ता-

---

मेरे उद्देश्यसे यह पिण्डदान करना॥ ८८॥ हे जनार्द्दन! तुमको नमस्कार है; तुम पितरोंको मुक्ति देनेवाले हो, तुमको नमस्कार है, तुम पितरोंके पति हो, तुमको नमस्कार है; तुम ही पितररूपी हो, तुमको नमस्कार है। ८६॥ हे जनार्द्दन गयाक्षेत्रमें तुम स्वयं पितृदेवके स्वरूपसे विराजित हो; हे कमललोचन! तुम्हारे दर्शन करनेसे ऋषि और पितरोंके ऋणसे मुक्ति होती है। हे त्रिविध ऋणसे मुक्ति देनेवाले पुण्डरीकाक्ष। तुमको नमस्कार है, हे श्रीपते! तुमको नमस्कार है, तुम पितरोंको मोक्ष देनेवाले बनो। ६० ६१। मध्यपाण्डव भीमसेनने अपना वामजानु भूमिपर गिराकर जनार्द्दनको नमस्कार करते हुए पिण्डदान किया था, इसीसे वह सौ कुल

व्यक्तात्मना स्थितः। लक्ष्मीशो विबुधैः सार्द्धं तस्माद्देव-
मयी शिला ॥ ६३ ॥

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवाराहकल्पे गयामाहात्म्ये
धर्म्मशिलोपाख्यानं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः।

नारद उवाच। कथं व्यक्तस्वरूपेण स्थितश्चादि-
गदाधरः। कथमव्यक्तरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ॥१
कथं गदा समुत्पन्ना यथा ह्यादिगदाधरः। गदालोलं

पितर और भाइयोंके साथ ब्रह्मधामको प्राप्त हुए थे। ६२।
इस धर्म्मशिलापर श्रीपति देवताओंके साथ व्यक्ताव्यक्त रूपसे
विराजित हैं, उसीसे यह धर्म्मशिला देवमयी हो गई है। ६३।
चौथा अध्याय समाप्त।

नारदने कहा, आदिगदाधरका व्यक्तरूपसे अवस्थान किस
प्रकार है? उनका अव्यक्त स्वरूप कैसा है? और व्यक्ताव्यक्त
रूप किस प्रकार है? १। जिस गदाके कारणसे आदिगदाधर

कथञ्चासीत् सर्व्वपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच। गदो नामासुरो ह्यासीद्वज्राद्वज्रतरो दृढ़ः। प्रार्थितो ब्रह्मणे प्रादात् स्वशरीरास्थि दुस्त्यजम् ।३। ब्रह्मोक्तो विश्वकर्म्मापि गदाञ्चक्रेऽद्भुतां तदा। तदस्थि वज्रनिष्पेषैः कुन्तैः स्वर्गे ह्यधारयत् ॥ ४ ॥ अथ कालेन महता मनौ स्वायम्भुवेऽन्तरे। हेती रक्षो महांस्तत्र तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणां शतं वायुभक्षयत्। ऊर्द्ध्वमुखश्चोर्द्ध्ववाहुश्च पादाङ्गुष्ठभरेण हि ॥ ६ ॥ ब्रह्मादींस्तपसा तुष्टान् वरं वव्रे वरप्रदान् ॥ ७ ॥

नाम पड़ा है, वह गदा किस प्रकारसे प्रसिद्ध हुई, वह गदा किस प्रकारसे उत्पन्न हुई और सर्व्व पापप्रणाशक गदालोल तीर्थ ही किस प्रकारसे उत्पन्न हुआ? २। सनत्कुमार बोले, वज्रसे भी कठोरतर गद नामक एक दैत्य था; ब्रह्माने उससे प्रार्थना करके उसके निज शरीरकी दुस्त्यज अस्थितक ली थी। ३। ब्रह्माके आदेशसे विश्वकर्म्माने वज्रनिष्पेष कुन्तोंके द्वारा उससे गदा नामक एक अत्यद्भुत अस्त्र निर्माण करके स्वर्गमें धर दिया। ४। हे नारद! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें हेति राक्षसने देवताओंके परिमाणसे एक लाख वर्षतक वायु सेवन-पूर्व्वक एक पांवके अंगूठेके अग्रभागके बल ऊर्द्ध्वमुख ऊर्द्ध्व-बाहु होकर तथा गले हुए पत्तका आहार और तिसके उप-

देवैर्दैत्यैश्च यस्त्रास्त्रैर्विविधैर्मनुजादिभिः । कृष्णशानस्य चक्राद्यैरवध्यः स्यां महाबलः ॥ ८ ॥ तथेत्युक्त्वान्तर्हितास्ते हेतिर्देवानथाजयत् । इन्द्रत्वमकरोद्धेतिर्भीता ब्रह्मादयः सुराः ॥ ९ ॥ हरिन्ते शरणं जग्मुरूचुर्हेतिं जहीति तान् । ऊचे हरिरवध्योऽयं हेतिर्देवासुरैः सुराः ॥ १० ॥ महास्त्रं मे प्रयच्छध्वं हेतिं हन्मि हि येन तम् । इत्युक्तास्ते ततो देवा गदां तां हरये ददुः ॥११॥ दधार तां गदामादौ देवैस्तो गदाधरः । गदया हेतिमाहत्य देवेभ्यस्त्रिदिवं ददौ ॥ १२ ॥

रान्त वायुमात्रका भक्षण करके ब्रह्मादि देवताओंको प्रसन्न करके वर पाया था। उससे हेति दैत्य सुर और नरगणके विविध शस्त्र, यहांतक कि कृष्णके चक्र और शिवके त्रिशूल प्रभृतिका अवध्य और महाबलिष्ट हुआ। देवगणके अन्तर्द्धान हो जानेपर हेतिने युद्धमें जय पाकर इन्द्रत्व ले लिया, उससे ब्रह्मादि देवता भीत हो गये। ५—८। वे लोग श्रीहरिके शरणागत होकर हेतिकी विजयवार्त्ता कहने लगे। हरिने कहा, हे देवताओ। हेति देव और दैत्योंके लिये अवध्य है। इसके लिये कोई गुप्त अस्त्र हमको दो, जिससे हम हेतिको विनाश कर सकें; यह सुनकर देवताओंने श्रीहरिको गदास्त्र दिया। १०—११। पहले पहल जब विष्णुने गदास्त्र

चालनार्थं गदा यत्र विष्णुना लोलिताभवत् । बभूव तद्गदालोलं तीर्थं परमपावनम् ॥ १३ ॥ गदामादाव-वष्टभ्य गयासुरशिरः शिलाम् । निश्चलार्थं स्थितो यस्मा-त्तस्मादादिगदाधरः ॥ १४ ॥ शिलापर्व्वतरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः । शिलायां मुण्डपृष्ठाद्रिः प्रभासो नग-पर्व्वतः ॥ १५ ॥ उद्यन्तो गीतनादश्च भस्मकूटो गिरि-र्म्महान् । गृध्रकूटः प्रेतकूटश्चादिपालोऽरविन्दकः ॥१६॥ पञ्चलोकः सप्तलोको वैकुण्ठो लोहदण्डकः । क्रौञ्चपादो-ऽक्षयवटः फल्गुतीर्थं मधुस्रवा ॥१७॥ दधिकुल्या मधुकुल्या

धारण किया, तब देवताओंने उनको गदाधर कहा, गदाद्वारा हेतिको मारकर हरिने देवताओंको स्वर्ग दे दिया।१२। उस गदाके पखारनेके लिये जो सरोवर रचा गया, उसका नाम परम विशुद्ध गदालोल तीर्थ है। १३। गयासुरको निश्चल करनेके लिये विष्णु आदिगदा धारण करके दैत्यके शिरके ऊपर धर्म्मशिलामें बैठे हैं, इसीसे उन्हें आदिगदाधर कहते हैं। १४। गयाक्षेत्रमें आदिगदाधर शिला और पर्व्वतोंके रूपसे व्यक्त हैं। तथा आदिगदाधर इस प्रकारसे अव्यक्त रूपोंमें स्थित हैं—प्रभास, नगपर्व्वत, उद्यन्त, गीतनाद, भस्मकूट महागिरि, गृध्रकूट, प्रेतकूट, आदिपाल, अरविन्द पर्व्वत, पञ्चलोक, सप्त-लोक, वैकुण्ठ, लोहदण्ड, क्रौञ्चपाद, अक्षयवट, फल्गुतीर्थ,

देविका च महानदी। वैतरण्यादिना व्यक्त-रूपेणा-दिगदाधरः॥ १८॥ विष्णोः पदं रुद्रपदं ब्रह्मणः पद-मुत्तमम्। कश्यपस्य पदं दिव्यं द्वौ हस्तौ यत्र निर्गतौ ॥ १९॥ पञ्चाग्नीनां पदान्यत्र इन्द्रागस्त्यपदे परे। रवेश्च कार्त्तिके यस्य क्रौञ्चमातङ्गयोरपि। मुख्यलिङ्गानि सर्व्वाणि व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः॥ २०॥ आद्यो गदाधरश्चैव व्यक्तः श्रीमान् गदाधरः॥ गायत्री चैव सावित्री सन्ध्या चैव सरस्वती॥ २१॥ गयादित्यश्चो-त्तरार्को दक्षिणार्कोऽपि नैमिषः। श्वेतार्को गणनाथश्च वसवोऽष्टौ मुनीश्वराः॥ २२॥ रुद्राश्चैकादशैवाथ तथा

मधुस्रव, दधिकुल्या, मधुकल्या, देविका, वैतरणी इत्यादि। भगवान् आत्माको व्यक्ताव्यक्त रूप करके इस प्रकारसे स्थित है;—विष्णुपद, रुद्रपद, उत्तम ब्रह्मपद, कश्यपका पद—जहां दो हाथ निकले हैं, यहीं पञ्चाग्निके पद हैं, फिर इन्द्र और अगस्त्य दोनोंके पद हैं, रविके. कार्त्तिकेयके तथा क्रौञ्च एवं मातङ्ग दोनोके पद तथा इसी तरह और भी मुख्य मुख्य चिन्ह व्यक्ताव्यक्त रूपके हैं। व्यक्त रूपसे गदाधर इस प्रकार हैं,—आदिगदाधर, श्रीमान् गदाधर, गायत्री, सावित्री, सरस्वती और गयादित्य, उत्तरार्क, दक्षिणार्क, नैमिष और श्वेतार्क

सप्तर्षयोऽपरे। सोमनाथश्च सिद्धेशः कपर्दीशो विनायकः ॥ २३ ॥ नारायणो महालक्ष्मीर्ब्रह्मा श्रीपुरुषोत्तमः। मार्कण्डेयेशः कोटीशो ह्यङ्गिरेशः पितामहः ॥२४ जनार्द्दनो मङ्गला च पुण्डरीकाक्ष उत्तमः। इत्यादिव्यक्तरूपेण स्थितश्चादिगदाधरः ॥ २५ ॥ हेतिर्यो राक्षसस्तस्मिन् हते विष्णुः स्थितः पुरा। ब्रह्मणा सह रुद्राद्यैः कारिते निश्चलेऽसुरे। तुष्टावाथ जगद्धाता प्रणतोऽपि गदाधरम् ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच।—गदाधरं कलिगतकल्मषापहं गयागतं गदितगुणं गुणातिगम्। गुहागतं गिरिवरगेहगोपितम् सुरार्च्चितं

सूर्य, गणनाथ नामक गणेश, अष्टवसु, मुनिवरगण, एकादशरुद्र, सप्तऋषि, सोमनाथ, सिद्धेश, कपर्दीश, विनायक, नारायण, महालक्ष्मी, श्रीपुरुषोत्तम, मार्कण्डेयेश, कोटीश, अङ्गिरेश, पितामह, जनार्द्दन, मङ्गला और पुण्डरीकाक्ष— इत्यादि व्यक्तरूपोंसे आदिगदाधर स्थित हैं। १५—२५। हेति राक्षसको मारके गयासुरको निश्चल करनेके लिये उसकी देहमें ब्रह्मा और रुद्रादि देवताओंके एक साथ बैठ जानेपर जगद्धाता ब्रह्मा आदिगदाधरकी स्तुति इस प्रकार करने लगे। २६। गयाधाममें स्थित, कलियुगमें प्राप्त कल्मषोंके हरनेवाले, सर्व्वमुखकथित गुणवाले, तीनो गुणोंसे अतीत, गुहामें प्राप्त अति

वरदमहं नमामि तम्॥ २७॥ शुभश्रियं विद्यगणा-दिसुश्रियम् यशःश्रियं दितिभवदारुणश्रियम्। कला-गतं कलिमलमर्द्दनश्रियं गदाधरं नौमि तमाश्रितश्रियम्॥ २८॥ दृढाद्दृढं परिदृढगाढसंस्तुतं कामाद्भुतं सुदृढ-मस्लढ़िरूढ़ितम्। तमाढ्यगं दृढदुरितायढौकितम् स्वढौकितं दृढतरगोत्रसूक्तिभम्॥ २९॥ विद्वेहकं कष्णविकाश-वर्ज्जितम् वियन्मसङ्गिमकरवारिभूषितम्।

सूक्ष्म धर्म्मरूप, इस गिरिवर रूप धरद्वारा गोपित, देवता-ओंके द्वारा अर्चित, वर देनेवाले उन्हीं गदाधरको मैं नमस्कार करता हूं। २७। जिनकी श्री अर्थात् शोभा अतीव शुभ है, देवगणकी जो आदि सुन्दर श्री हैं, यश जिनकी श्री है, जिनकी श्री दैत्योंके लिये दारुण है, जो सोलह कलाओंमें प्राप्त हैं, जिनकी श्री कलिमलका मर्दन करनेवाली है, श्रीके द्वारा जो आश्रित हैं, ऐसे गदाधरको नमस्कार करता हूं। २८। दृढ़से भी दृढ़तर, चारो ओरसे गाढ़ रूपसे भले प्रकारसे स्तुत, अपनी इच्छासे अद्भुतरूपधारी, सुदृढ़, रूढ़ि शब्दोंसे अरूढ़ित अर्थात् परे हैं, आढ्य लोगोंको प्राप्त, दृढ़ पाप आदिसे अढौ-कित अर्थात् अप्राप्त, सर्व्वस्व करके ढौकित अर्थात् पूजित, दृढ़-तर गोत्र अर्थात् कुलोंकी सुन्दर कही हुई स्तुतियोंसे जिनकी आभा है, ऐसे जनार्दनको नमस्कार है। २९। द्वैधसे रहित,

गदाधरं ध्वनिमुखवर्ज्जितं परं नमाम्यहं सततमनादि-
मीश्वरम् ॥ ३० ॥ मनोगतं मतिगतिवर्ज्जितं परं भ्रमा-
त्मकं श्रुतिशिरसि स्थितं बुधम्। चिदात्मकं कलिगतका-
रणातिगं गदाधरं हृदयगतं नमाम्यहं ॥ ३१ ॥ सनत्-
कुमार उवाच। देवैः सार्द्धं ब्रह्मणा तु स्तुतश्चादिगदाधरः।
ऊचे वरं वृणीष्व त्वं वरं ब्रह्मा तमब्रवीत्॥३२॥ शिलायां
देवरूपिण्यां स्थिरं तिष्ठ सुरेश्वर। व्यक्तो गदाधरो
भूत्वाऽव्यक्तश्चैव जनार्द्दनः ॥ ३३ ॥ लोकानां रक्षणा-
र्थाय तमुवाच गदाधरः। शिलायां देवरूपिण्यां स्थित्वा

इन्द्रिय और कालसे विवर्जित, आकाशवायुचन्द्रजलसे भूषित, गदास्त्रके धरनेवाले, ध्वनि और सुख रहित, परमात्मा, अनादि, ईश्वरको मैं सदा नमता हूं। ३०। परमात्मा होकर भी जो मनमें स्थित हैं, जो मतिगति आदिसे वर्जित हैं, जो भ्रम अर्थात् भ्रान्ति आत्मक हैं, जो सर्वज्ञ हैं, जो वेदके शिरोंमें स्थित हैं, जो चैतन्यात्मक हैं, जो कलियुगप्राप्त कारणोंसे अतीत हैं, जो सर्व्व जीवोंके हृदयगत हैं, जो गदाके धरनेवाले हैं, मैं उन्हींको नमस्कार करता हूं। ३१। सनत्कुमार बोले, देवताओं समेत ब्रह्माके ऐसे स्तुति करनेपर आदिगदाधरने कहा, तुम वर मांगो। तब ब्रह्माने कहा, हे सुरेश्वर! लोककी रक्षाके लिये देवस्वरूपिणी इस धर्म्मशिलाके ऊपर व्यक्त गदाधर

यूयं तु तिष्ठत ॥ ३४ ॥ सुव्यक्तः पुण्डरीकाक्षः श्वेत-कल्पे तथा स्थितः। वेदेशस्या या मूर्त्तिरादिभूता सनातनी ॥ ३५ ॥ अव्यक्तः श्वेतकल्पे तु भविष्यामि तथा पुनः। वाराहकल्पे सुव्यक्तो देव आदिगदाधरः ॥ ३६ ॥ सन्तारणाय लोकानां देवानां रक्षणाय च। गयाशिरसि सुव्यक्तो भविष्यामि न संशयः ॥ ३७ ॥ ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्ता देवमादिगदाधरम्। कुष्ठादि-व्याधिनिर्मुक्ता यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम्। ते प्राप्स्यन्ति

मूर्त्ति और अव्यक्त जनार्दन मूर्त्ति धारण करके स्थिर भावसे यहां अधिष्ठान कीजिये। गदाधरने ब्रह्मादि देवगणसे कहा, तुम लोग भी देवरूपिणी धर्म्मशिलापर स्थित हो ; देवताओंको भी अगम्य आदि सनातन पुण्डरीकाक्ष मूर्त्ति श्वेतकल्पमें व्यक्त थी, वह मूर्त्ति श्वेतवाराहकल्पमें अव्यक्त हो गई थी, अब फिर आदिगदाधरके रूपसे भली प्रकार व्यक्त होगी। ३२—३६। देवताओंकी रक्षा और समस्त प्राणियोंके परित्राणके लिये मैं गयाके शिरमें भले प्रकारसे व्यक्त रहूंगा, इसमें सन्देह नहीं है। ३७। जो व्यक्ति निरन्तर आदिगदाधर देवके दर्शन भक्ति-पूर्व्वक करेगा, वह कुष्ठादि रोगोंसे छूट जावेगा और अन्तमें वैकुण्ठधामको पावेगा। ३८। भक्तिपूर्व्वक निरन्तर आदिगदा-

धनं धान्यमायुरारोग्यमेव च। कलत्रपुत्रपौत्रादि गुण-कीर्त्तिसुखानि च ॥ ३९ ॥ श्रद्धया ये नमस्यन्ति राज्यं ब्रह्मपुरं तथा। भुक्त्वा व्रजेयुः सततं पुण्यपुष्पफलं नराः ॥ ४० ॥ गन्धदानेन गन्धाढ्यः सौभाग्यं पुष्प-दानतः। धूपदानेन राज्याप्तिर्दीपाद्दीप्तिं प्रयच्छति ॥४१ ध्वजदानात् पापहानि-र्यात्राकृद्ब्रह्मलोकभाक्। श्राद्ध-पिण्डप्रदो यस्तु विष्णुं नेष्यन्ति वै पितॄन् ॥ ४२ ॥ श्रद्धया ये नमस्यन्ति स्तोत्रेणादिगदाधरम्। स्तोष्यन्ति च समभ्यर्च्चंत्र पितॄन्नेष्यति माधवम् ॥ ४३ ॥ शिवोऽपि परया प्रीत्या तुष्टावादिगदाधरम्। अव्यक्तरूपो यो

घरको निरीक्षण करके धनधान्य, आयु, अरोग्य स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि, गुण, कीर्त्ति और सुख लाभ होता है। ३९। इनको श्रद्धा पूर्व्वक प्रणाम करनेसे लोग इस संसारमें राज्यभोगपूर्व्वक बहुत भांति पुण्यसञ्चय करके अन्तमें ब्रह्मपदको जाते हैं। ४०। गन्ध-दान करनेसे बहुतसी सुगन्ध, धूपदानसे राज्यप्राप्ति, दीपदानसे उत्तम कान्ति; ध्वजदानसे पापनाश, महोत्सव करनेसे ब्रह्म-लोककी प्राप्ति और श्राद्धादि पिण्डदानसे पितरोंकी मुक्ति होती है। ४१—४२। आदिगदाधर देवकी पूजा करके वक्ष्य-माण स्तोत्रद्वारा स्तव करनेसे पितरोंकी मुक्ति होती है। ४३। महादेवने स्वयं इसी स्तोत्रसे आदिगदाधर देवकी स्तुति

देवो मुण्डपृष्ठादिरूपतः। फल्गुतीर्थादिरूपेण नमा-न्यादिगदाधरम् ॥ ४४ ॥ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण पदरूपेण संस्थितम् ॥ मुख्यलिङ्गादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४५ ॥ व्यक्तरूपो हि यो देवो जनार्द्दनस्वरूपतः। मुण्डपृष्ठे स्वयं ह्यस्ति नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४६ ॥ शिलायां देवरूपिण्यां स्थितं ब्रह्मादिभिः सुरैः। पूजितं संस्तुतं देवं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४७ ॥ यन्त्र दृष्ट्वा तथा स्पृष्ट्वा पूजयित्वा प्रणम्य च। श्राद्धादौ ब्रह्मलोकाप्तिर्नमाम्यादि गदाधरम् ॥ ४८ ॥ महादेवञ्च

की थीं,—मुण्डपृष्ठगिरि और फल्गुतीर्थ प्रभृतिमें जो देवता अव्यक्तरूपसे स्थित है, उसी आदिगदाधरको नमस्कार है। ४४। पदचिन्ह और मुख्यलिङ्ग आदिके रूपसे व्यक्ता-व्यक्तके स्वरूपमें जो देवता यहां अधिष्ठित हैं, उन्हीं आदि-गदाधरको नमस्कार है। ४५। जनार्दनके रूपसे जो देवता मुण्डपृष्ठ गिरिपर व्यक्त हैं, उन्हीं आदिगदाधरको मैं नमस्कार करता हूं। ४६। देवरूपिणी शिलामें ब्रह्मादि देवताओंके साथ बैठे हुए सर्व्वपूजित सर्व्वस्तुत आदि गदाधर देवको नमस्कार करता हूं। ४७; जिनको देखके, छूके, पूजके प्रणाम करके, और श्राद्धादिमें भजके ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, उन्ही आदिगदाधरको मैं नमताहूं। ४८। सब देवता-

जगतो व्यक्तस्यैकं हि कारणम्। अव्यक्त ज्ञानरूपं तं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४९॥ देहेन्द्रियमनोबुद्धि-प्राणाहङ्कारवर्जितम्। जाग्रत्स्वप्नविनिर्मुक्तं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ५० ॥ नित्यानित्यविनिर्मुक्तं सत्यमानन्दमव्ययम्। तुरीयं ज्योतिरात्मानं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ५१ ॥ सनत्कुमार उवाच। एवं स्तुतो महेशेन प्रीतो ह्यादिगदाधरः। स्थितो देवः शिलायाम् स ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ॥५२॥ संस्थितं मुण्डपृष्ठाद्रौ देवमादिगदाधरम्। स्तुवन्तिपूजयन्तीह ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते ॥ ५३ ॥ धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्म-मर्थार्थी चार्थमाप्नु-

---

ओंमें बड़े, अव्यक्तके ज्ञानस्वरूप उन्हीं आदि गदाधरको मैं नमता हूं। ४९। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहङ्कारसे वर्जित और जाग्रत तथा स्वप्नावस्थासे रहित आदिगदाधरको मैं नमस्कार करता हूं। ५०। जो नित्यानित्यके झगड़ेसे विमुक्त, सत्य, अविनाशी, आनन्द, तुरीय, ज्योति, स्वात्मा हैं, उन्हीं आदिगदाधरको नमस्कार करता हूं। ५१। सनत्कुमार बोले, इस प्रकार महेश्वरकृत स्तोत्रसे प्रसन्न होकर आदिगदाधर देव ब्रह्मादि देवताओंके साथ धर्मशिलापर अधिष्ठान करने लगे। ५२। मुण्डपृष्ठ गिरिपर आदिगदाधर देवका स्तव और अर्चना करनेसे ब्रह्मधाममें गमन होता है। ५३

यात्। कामानवाप्नुयात् कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नु-यात्॥ ५४॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगं। राजा विजयमाप्नोति शूद्रश्च सुखमाप्नुयात्॥ ५५॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रमभ्यर्च्चाादिगदाधरं। मनसा प्रार्थितं सर्व्वं पूजाद्यैः प्राप्नुयाद्धरेः॥ ५६॥

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवराहकल्पे गयामाहात्म्ये आदिगदाधरोपाख्यानं नाम
पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

धर्म्मार्थीको धर्म्म, अर्थार्थीको अर्थ, कामीको काम, और मोक्षार्थीको मोक्ष मिलती है। ५४। वन्ध्या नारी वेदाङ्ग-पारङ्गत पुत्रको पाती है, राजाको विजय मिलती है और शूद्रको सुख मिलता है। ५५। आदिगदाधरकी पूजासे अपुत्रको पुत्र मिलता है और हरिकी पूजादिसे सर्व्वमनो-वाञ्छित मिलता है।

पञ्चम अध्याय समाप्त।

षष्ठोऽध्यायः।

सनत्कुमार उवाच। गयायात्रां प्रवक्ष्यामि शृणु नारद मुक्तिदां। निष्कृतिः श्राद्धकर्त्तॄणां ब्रह्मणा गीयते पुरा ॥ १ ॥ उद्यतश्चेद्गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कर्पटीवेशं कृत्वा ग्रामं प्रदक्षिणां॥२॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनं। ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्ज्जितः ॥ ३ ॥ प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः। अहङ्कारविमुक्तो यः स तीर्थफलमश्नुते ॥ ४ ॥ यस्य हस्तौ च पादौ च

सनत्कुमार बोले, हे नारद! पितरोंको मोक्ष देनेवाली और श्राद्धकर्त्ताका उद्धार करनेवाली गयायात्राका वर्णन करता हूं, सावधान होजाओ। आगे ब्रह्माने यह यात्रा गाई थी।१। गयामें जानेको उद्यत होकर विधिपूर्व्वक यात्रोचित पार्व्वण श्राद्ध करके तीर्थयात्रीका वेष धारण करे और गांवकी प्रदक्षिणा करे ।२। अनन्तर श्राद्धके शेषमें आहार करके ग्रामान्तरमें जाकर वास करे और उसी दिनसे किसीके पाससे कोई द्रव्य ग्रहण न करे और प्रतिदिन कुछ कुछ मार्ग चले।३। जो व्यक्ति दूसरेका दान नहीं ग्रहण करता है, जिसका मन संयत है, जो सन्तुष्ट है, जो शुद्ध हैं, जो अहङ्कारसे छूटा हुआ

ननश्चापि सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थ-फलमश्नुते ॥५॥ ततो गयाप्रवेशे च पूर्व्वतोऽस्तु महा-नदी। तत्र तोयं समुत्पाद्य स्नातव्यं निर्म्मले जले ।६॥ देवादींस्तर्पयित्वाथ श्राद्धं कृत्वा यथाविधि। स्वस्व-वेदशाखोदित-मर्घ्यावाहनवर्ज्जितं ॥ ७ ॥ अपरेद्युः शुचिर्भूत्वा गच्छेद्वै प्रेतपर्व्वते। ब्रह्मकुण्डे ततः स्नात्वा देवादींस्तर्पयेत् सुधीः ॥ ८ ॥ कुर्य्यात् श्राद्धं सपि-ण्डानां प्रयतः प्रेतपर्व्वते। प्राचीनावीतिना भाव्यं दक्षिणाभिमुखः सुधीः ॥ ९ ॥ काव्यवालोऽनलः सोमो

है, जो नियमपूर्व्वक रहता है, वही तीर्थका फल पाता है। ४। जिसके दोनो हाथ कुकर्म्म नहीं करते, जिसके दोनो पांव कुमार्गमें नहीं चलते है, जिसके विद्या तप और कीर्त्ति है, वही तीर्थका फल पाता है। ५। तिसके पीछे गयाधाममें प्रवेश करके उसके पूर्व्वमें स्थित महानदीमें बालू खोदकर और जल निकालकर उस निर्म्मल जलमें स्नान करे। ६। स्नानके अन्तमें विधिपूर्व्वक देवता प्रभृति सबका तर्पण करके अपने अपने वेदकी शाखामें कही हुई विधिके अनुसार अर्घ्य और आवाहनरहित एक पार्व्वण श्राद्ध करें। ७। उसके दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतशिलापर जावे, वहां बुद्धिमान् व्यक्ति ब्रह्मकुण्डमें स्नान करके देवतादि सबका तर्पण करे। ८। वहां प्रेतशिलापर

यमश्चैवार्य्यमा तथा। अग्निष्वात्ता वर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥ १० ॥ आगच्छन्तु महाभागा युष्माभीरक्षिताश्विह। मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः ॥ ११ ॥ तेषां पिण्डप्रदानार्थ-मागतोऽस्मि गयामिमां। ते सर्व्वे तृप्तिमायान्तु श्राद्धेनानेन शाश्वतीं ॥ १२ ॥ आचम्योक्त्वा च पञ्चाङ्गं प्राणायामं प्रयत्नतः। पुनरावृत्तिरहितो ब्रह्मलोकाप्तिहेतवे ॥१३॥ एतच्च विधिवत् श्राद्धं कृत्वा पूर्व्वं तथाक्रमं। पितृनावाह्य चाभ्यर्च्य मन्त्रैः पिण्डप्रदो भवेत् ॥ १४ ॥ तीर्थे प्रेतशिलादौ च चरुणा सघृतेन वा। प्रक्षाल्य पूर्व्वं

जाकर विपरीत भावसे उत्तरीय धारण करके दक्षिणकी ओर मुख करके संयत चित्तसे सपिण्ड लोगोंका श्राद्ध करे। ९। कव्यवाल, अनल,सोम,यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, वर्हिषद, सोमप प्रभृति महाभाग दिव्य पितर लोग हमलोगोंके रक्षक होकर इस स्थानमें आवें। मैं अपने कुलके समस्त पितर और सपिण्डों-को पिण्डदान करनेके लिये गयाजी में आयाहूं, मेरे इस श्राद्धसे आपलोग सब अक्षय तृप्ति लाभ करें। १०-१२। पीछे आचमन करके पितरोंके ब्रह्मलोक पाने और फिर जन्म मरणके अभावके लिये यत्नपूर्वक पञ्चाङ्ग प्राणायाम करे। १३। इस प्रकार सङ्कल्प करतेहुए मन्त्रोच्चारणके साथ विधिपूर्वक,आवाहन पूजन

तत् स्थानं पञ्चगव्यैः पृथक् पृथक्। मन्त्रैस्तैरथ संपूज्य पञ्चगव्यैश्च देवतां ॥ १५ ॥ यावन्तिला मनुष्यैश्च गृहीताः पितृकर्म्मसु। गच्छन्ति तावदसुराः सिंहत्रस्ता यथा मृगाः ॥ १६ ॥ अष्टकासु च वृद्धौ च गयायाञ्च मृतेऽहनि। मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्य्यादन्यत्र पतिना सह। वृद्धिश्राद्धे तु मात्रादि गयायां पितृपूर्व्वकं ॥ १७ ॥ पादपूर्व्वं समारभ्य दक्षिणाग्रकुशैः क्रमात्। पित्रादीनां समास्तीर्य्य शेषं गृह्योक्तमाचरेत् ॥ १८ ॥ दद्युः श्राद्धं

और पिण्डदान करके श्राद्ध करे। १४। प्रेतगिरिपर सहृत चरुके द्वारा पिण्डदान करे; वहां श्राद्धके पहले पञ्चगव्यद्वारा अलग अलग स्थान धोकर और परिष्कार करके मन्त्रद्वारा क्रियाका आरम्भ करे। १५। लोग पितरोंके श्राद्धकार्य्यके लिये जितने तिल ग्रहण करते हैं, तितनीही दूर श्राद्धके विघ्नकारी असुर सिंहको देखनेसे मृगकी भांति भागते हैं। १६। अष्टका श्राद्ध वृद्धिश्राद्ध और मृताह श्राद्धमें केवल माताका श्राद्ध पृथक् करना होता है; अन्यत्र पिताके साथ करना होता है; तिसमें भी वृद्धिश्राद्धमें माताका श्राद्ध पहले और गयाश्राद्धमें पिताका श्राद्ध पहले करना होता है, यही प्रभेद है। १७। पूर्वकी ओरसे दक्षिणकी ओर आगा करके कुशोंको बिछावे

सपिण्डानां तेषां दक्षिणभागतः। कुशानास्तीर्य्य विधिना सकृद्दत्त्वा तिलोदकं॥ १९॥ गृहीत्वाञ्जलिना तेभ्यः पितृतीर्थेन यत्नतः। सक्तून मुष्टिमात्रेण दद्यादक्षय्यपिण्डकं। सम्बन्धिनस्तिलाद्भिश्च कुशेष्वावाहयेत्ततः॥ २०॥ आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। तृप्यन्तु पितरः सर्व्वे मातृमातामहादयः॥ २१॥ अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनां। आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकं॥ २२॥ पिता पिता-

---

और पितृकर्म्मका आरम्भ करे; पहले पितरोंका कार्य्य शेष हो जानेपर उनके दक्षिण भागमें सपिण्डोंका कार्य्य करे; अलग अलग सबको तिलोदक देवे। पीछे मुट्ठीभर सत्तू लेकर अंगूठे और तर्जनीके मध्यवर्त्ती स्थानमें होकर यत्नपूर्व्वक कुशके ऊपर अक्षय पिण्डदान करे। तिल, घृत और मधु प्रभृति पिण्डद्रव्य एकत्र करे, पिण्डद्रव्य ये हैं,—पायस, चरु, सत्तू, पिठी, गुड़, तण्डुल प्रभृतिके द्वारा पिण्डदान करे। पीछे सम्बन्धी लोगोंको तिलोदकद्वारा कुशके ऊपर आह्वान करे। १८—२०। ब्रह्माण्डके आदिसे अन्ततक जितने देवता ऋषि पितर मानव प्रभृति पितृगण हैं, वे सब पितर और माता तथा मातामह आदि तृप्त हों। अतीत कोटि कुलोंके पितर, सप्तद्वीपनिवासी पितर, यहांतक कि इस समस्त ब्रह्मभुवन और लोकके पितर इसी तिलोदकसे परितृप्ति लाभ करें। २१—२२। पिता, पितामह,

सहश्चैव तथैव प्रपितामहः। माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही। मातामहस्तत्पिता च प्रमातामह-कादयः। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतां ॥२३ मुष्टिमात्रप्रमाणञ्च आर्द्रामलकमात्रकं। शमीपत्र-प्रमाणं वा पिण्डं दद्याद्गयाशिरे। उद्धरेत् सप्त गोत्राणि कुलानि शतमुद्धरेत् ॥ २४ ॥ पितुर्मातुश्च भार्य्याया भगिन्या दुहितुस्तथा। पितृष्वसुर्मातृष्वसुः सप्त गोत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ २५ ॥ विंशतिर्व्विंशतिरिन्द्राः षोड़श द्वादशैव हि। रुद्रादिवसवश्चैव कुलान्येकोत्तरं शतं ॥२६॥ नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भवः। सकारु-

---

प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह प्रभृति पितरोंके लिये मैं पिण्ड अर्पण करता हूं, वह उनकी अक्षय तृप्तिका कारण होवे।२३। मुष्टिमात्र, हरे आंवलेके समान अथवा शमीपत्रके प्रमाणका पिण्ड गयाशिरमें देना होता है। उससे सात गोत्रके एक सौ एक कुलोंका परित्राण होता है। माता, पिता, श्वशुर, बहिन, जामाता, फूफी, और मौसी ये सात गोत्र हैं। इनमें माताके २१, पिताके २०, श्वशुरके ८, भगिनीके १०, जमाईके १६, फूफीके ११ और मौसीके १२, सब मिलाकर १०१ कुल हैं। २४—२६। तीर्थके श्राद्धमें आवाहन, दिग्बन्धन वा नीच

ण्येन कर्त्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥ २७ ॥ पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनं । दक्षिणा चान्नसङ्कल्पं तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ॥ २८ ॥ अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान् सर्व्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ २९ ॥ मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान् सर्व्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ ३० ॥ बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान् सर्व्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ ३१ ॥ इत्येतैर्मन्त्रैः सजलैस्तिलैर्दर्भेषु ध्यानवान् । आवाह्याभ्यर्च्य तेभ्यश्च पिण्डान् दद्याद्-

---

जातिके दर्शनका कोई दोष नहीं है। पण्डित लोगोंको कार्पण्यभावसे तीर्थश्राद्ध करना चाहिये। २७। पिण्डासन, पिण्डदान, अवनेजन, दक्षिणा और अन्नसङ्कल्प करना तीर्थश्राद्धकी विधि है। २८। मेरे वंशमें मरे हुए व्यक्ति और जिनकी कोई गति नहीं है, उन लोगोंको तिलोदकद्वारा दूर दर्भपृष्ठपर आवाहन करता हूं। २९। मेरे मातामहके कुलोंमें जितने मृत व्यक्तियोंकी कोई गति नहीं है, उन लोगोंको तिलोदकद्वारा इस दर्भपृष्ठपर आह्वान करता हूं। ३०। बन्धुवर्गके कुलमें जितने मृत व्यक्तियोंकी कोई गति नहीं हुई, उन लोगोंको तिलोदकद्वारा इस दर्भपृष्ठपर आह्वान करता हूं। ३१। इन

यथाक्रमं ॥ ३२ ॥ अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं ॥३३॥ मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं ॥ ३४ ॥ बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं ॥ ३५ ॥ अजातदन्ता ये केचित् ये च गर्भे प्रपीड़िताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं ॥ ३६ ॥ अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथापरे। विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददा-

---

समस्त मन्त्रोंसे तिलोदकद्वारा दर्भपृष्ठपर उन लोगोंका आवाहन करके ध्यान और पूजा करते हुए यथाक्रमसे पिण्डदान करे। ३२। मेरे पिताके वंशमें जितने मृतव्यक्तियोंको कोई गति नहीं हुई, उनके परित्राणके लिये मैं यह पिण्ड देता हूं। ३३। मेरे मातामहके वंशमें जितने मृत व्यक्तियोंको कोई गति नहीं हुई, उनके परित्राणके लिये मैं यह पिण्डदान करता हूं। ३४। मेरे बन्धुवर्गके कुलमें जितने मृत व्यक्तियोंको कोई गति नहीं हुई, उनके परित्राणके लिये मैं यह पिण्डदान करता हूं। ३५। जो लोग दांत निकलनेके आगे अथवा गर्भावस्था हीमें मर गये हैं, उनके परित्राणके लिये मैं यह पिण्ड प्रदान करता हूं। ३६। जो लोग आगमें जलकर मर गये हैं, अथवा जिनकी देहका अग्निसंस्कार नहीं हुआ, जो लोग

स्यहं ॥ ३७ ॥ दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये। दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहं ॥३८॥ उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये। आत्मापघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहं ॥ ३९ ॥ अरण्ये वर्त्मनि रणे क्षुधया तृषया हताः। भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहं । ४० ॥ रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं ॥ ४१ ॥ असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये

वज्रसे अथवा चोरोंके हाथसे मारे गये हैं, उनको मैं यह पिण्ड देता हूं ।३७। जो लोग दावानलमें मर गये, अथवा सिंह व्याघ्रद्वारा मारे गये हैं, अथवा जो लोग बड़े बड़े दांतवाले वा बड़े बड़े सींगवाले जन्तुओंके द्वारा मारे गये हैं, उनको मैं पिण्डदान करता हूं। ३८। जो लोग उदन्धन अर्थात् फांसीसे मरे हैं, जो लोग विष अथवा शस्त्राघातसे मरे हैं, जो आत्महत्यारे हैं, मैं उनको यह पिण्ड देता हूं ।३९। निविड़ वनमें, मार्ग चलनेमें, युद्धमें, भूखसे अथवा प्याससे जो मर गये हैं अथवा जो लोग भूतप्रेत पिशाच आदिके द्वारा मारे गये हैं, मैं उनको यह पिण्ड देता हूं । ४० । रौरव, अन्धतामिस्र, कालसूत्र प्रभृति नरकोंमें जो लोग हैं, उनकी रक्षाके लिये मैं यह पिण्ड देता हूं । ४१ । जो लोग भयङ्कर असिपत्र वा कुम्भीपाक नरकमें हैं, उनके उद्धारके लिये

गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं। ४२॥ अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकञ्च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं॥ ४३॥ अनेकयातनासंस्था ये नीता यमशासने। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं॥ ४४॥ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहं॥ ४५॥ पशुयोनिगता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः। अथवा वृक्षयोनिस्था-स्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहं॥ ४६। जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्तः स्वेन कर्म्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहं॥ ४७॥ दिव्यन्तरीक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्ध-

---

मैं यह पिण्ड देता हूं। ४२। अनेक पीड़ाओंमें संस्थित प्रेत-लोकको जो चले गये हैं, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड देता हूं। ४३। जो लोग यमपुरमें जाकर बहुत कष्ट भोगते हैं, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान करता हूं। ४४। जो लोग अखिल नरकोंकी यातना भोग करते हैं, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान करता हूं। ४५। जो लोग पशु, पक्षी, कीट, सरीसृप अथवा वृक्षयोनिमें है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड अर्पण करता हूं। ४६। जो लोग स्वकर्म्मका फल भोगनेके लिये सहस्र सहस्र योनियोंमें भ्रमण करते हैं, जिन लोगोंके लिये मनुष्यजन्म दुर्लभ है, उनके उद्धारके लिये मैं

वादयः। मृता असंस्कृता ये च तेभ्यः पिण्डं ददा-म्यहं॥ ४८॥ ये केचित् प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते पितरो मम। ते सर्व्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डेनानेन सर्व्वदा॥४९॥ येऽवान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतां॥ ५०॥ पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः। गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः। ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्ज्जिताः। क्रियालोपगता ये च जातग्रन्धाः पङ्गवस्तथा। विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले

यह पिण्ड अर्पण करता हूं। ४७। स्वर्ग, मर्त्य, पातालमें जितने पितर और वान्धव हैं और जिनकी कभी कोई अन्त्येष्टि क्रिया नहीं हुई, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड अर्पण करता हूं। ४८। मेरे पितरोंके बीचमें जो लोग प्रेतरूपसे संस्थित हैं, वे लोग मेरे दिये इस पिण्डको पाकर सन्तुष्ट हों। ४९। जो लोग वान्धव, अवान्धव अथवा और किसी जन्मके वान्धव हैं, उनके उद्देश्यसे मेरा यह पिण्ड अक्षय फल दे। ५०। पिता, माता, गुरु, श्वशुर, और वन्धुओंके कुलमें जो लोग मर गये हैं अथवा जो लोग अवान्धव होकर मर गये हैं, मेरे वंशमें जिनका पिण्ड लुप्त हो गया है, जो लोग पुत्रकलत्रहीन हैं, जिन लोगोंकी क्रिया लुप्त हो गई है, जो गर्भ हीसे अन्धे अथवा पङ्गु अथवा कुरूप थे अथवा कच्चे गर्भके गिरनेसे मर गये थे और अपने

मम। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतां ॥ ५१ ॥ आब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः। कुलद्वये ये मम दासभूता भृत्यास्तथैवाश्रितसेवकाश्च। मित्राणि सख्यः पशवश्च वृक्षा दृष्टाश्च दृष्टाश्च कृतोपकाराः। जन्मान्तरे ये मम सङ्गताश्च तेभ्य स्वधा पिण्डमहं ददामि ॥ ५२ ॥ एतैश्च सर्व्वैर्मन्त्रैस्तु स्त्रीलिङ्गान्तं समूह्य च। पिण्डान्दद्याद्यथा पूर्व्वं स्त्रीणां मात्रादिक्रमात्। स्वगोत्रे परगोत्रे वा दम्पत्योः पिण्डपातनं। अपृथक् निष्फलं श्राद्धं पिण्डञ्चोदकतर्पणं ॥ ५३ ॥ पिण्डपात्रे तिलान् क्षिप्त्वा पूरयित्वा शुभोदकैः।

वंशके जिन सब व्यक्तियोंको मैं जानता हूं अथवा नहीं जानता हूं, उन लोगोंके लिये मेरा दिया यह पिण्ड अक्षय फलका देनेवाला होवे। ५१। मेरे पिता और माताके कुलमें ब्रह्मासे लेकर आजतक जितने लोग उत्पन्न हुए हैं, इन दोनो वंशके मनुष्य दास, भृत्य, आश्रित, सेवक, मित्र प्रभृति सब, पशु वृक्ष प्रभृति, प्रत्यक्ष वा परोक्षमें उपकार करनेवाले उपकारी व्यक्तिगण और जन्मान्तरमें मेरे सङ्गी लोग—इन सबके उद्देश्यसे स्वधा शब्दका उच्चारण पूर्वक मैं यह पिण्ड अर्पण करता हूं। ५२। इन सब मन्त्रोंके द्वारा स्त्रीको स्त्रीलिङ्ग पद द्वारा पृथक् पृथक् पिण्डदान करे। अपृथक् श्राद्ध, पिण्डदान वा तर्पण आदि विफल होता है। ५३। पिण्डपात्रमें तिल रखकर

परिषिच्य] त्रिधा सर्व्वान् प्रणिपत्य समापयेत् ॥ ५४ ॥ पितॄन् विसृज्य चाचम्य साक्षिणः श्रावयेत् सुरान् । साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा । मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥ ५५ ॥ आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्य्ये गदाधर । त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात् ॥ ५६ ॥ सर्व्वस्थानेषु चैवं स्यात् पिण्डदानन्तु नारद । प्रेतपर्व्वतमारभ्य कुर्य्यात्तीर्थेष्वनुक्रमात् ॥ ५७ ॥ तिलमिश्रांस्ततः सक्तून् निक्षिपेत् प्रेतपर्व्वते । अपसव्येन देवर्षे दक्षिणाभि-मुखो नरः ॥ ५८ ॥ ये केचित् प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते

उत्तम जल पूर्ण भर दे और तीन वार उस जलसे अभिषेचन करके नमस्कार पूर्वक श्राद्धशेष करे। ५४। अनन्तर पितरोंका विसर्जन करके देवताओंको साक्षी समझाते हुए इस प्रकार निवेदन करे,—ब्रह्मा महेश्वर आदि देवगण साक्षी रहें, मैंने गयामें आकर पितरोंकी निष्कृतिकी है। ५५। हे देव गदाधर! आप साक्षी रहे, मैं पितृकार्यके लिये गयामें आकर देव ऋषि और पितरोंके ऋणसे मुक्त हो चुका हूं। ५६। हे नारद! अपने वा पराये गोत्रके स्त्री पुरुषोंका नाम उच्चारण करके प्रेतशिलासे आरम्भ करके तीर्थके सभी स्थानोंमें इस विधिसे पिण्डदान करना उचित है; तत्पश्चात् दक्षिण मुख होकर, दक्षिण हस्तसे तिलमिश्रित सत्तू यह कहकर प्रेतशिलापर

पितरो मम। ते सर्व्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिल-मिश्रितैः ॥ ५९ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं यत् किञ्चित् सचराचरं। मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमायान्तु सर्व्वशः ॥ ६० ॥ प्रेतत्वाच्च विमुक्ताः स्युः पितरस्तस्य नारद। प्रेतत्वं तस्य माहात्म्यात् कुले चापि न जायते ॥ ६१ ॥ नाम्ना प्रेतशिला ख्याता गयायां भुवि मुक्तये। तीर्थमन्त्रादिरूपेण स्थितश्चादि-गदाधरः ॥ ६२ ॥

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवराहकल्पे गयामाहात्म्ये पिण्डदानपद्धतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

फिर,—"मेरे पितरोंमें जो लोग प्रेतरूपसे अधिकार करते हैं, वे तिल मिश्रित सत्तुओंसे प्रीत हों।५७-५९। चराचरमें जितने समस्त प्राणी हैं, सब मेरे दिये हुए जलसे परितृप्त हों।६०। हे नारद यहां पितरोंका प्रेतत्व छूट जाता है और इसके माहात्म्यसे वंशमें कभी प्रेत नहीं उत्पन्न होता है, इसी लिये पृथ्वीपर गयाक्षेत्रकी यह प्रेतशिला प्रसिद्ध है; एवं जीवोंकी मुक्तिके लिये आदिगदाधर देव स्वयं तीर्थ और मन्त्रके रूपसे इस स्थानमें अधिष्ठान करते हैं।६१।६२।

इति षष्ठ अध्याय समाप्त।

सप्तमोऽध्यायः ।

सनत्कुमार उवाच । आदौ तु पञ्चतीषु चोत्तरे मानसे विधिः । आचम्य कुशहस्तेन शिरश्चाभ्युक्ष्य वारिणा । उत्तरं मानसं गच्छेन्मन्त्रेण स्नानमाचरेत् ॥१
उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये । सूर्य्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये ॥ २ ॥ देवादींस्तर्पयित्वाथ श्राद्धं कुर्य्यात् सपिण्डकं । मानसं हि सरो ह्यत्र तस्मादुत्तरमानसं ॥ ३ ॥ नमो भगवते भर्त्त्रे सोमभौमस्वरूपिणे । जीव भार्गव शौरेय राहु-केतुस्वरूपिणे । सूर्य्यं नत्वार्च्चयित्वाथ सूर्य्यलोकं नयेत्

सनत्कुमार बोले, पञ्चतीर्थके आगे उत्तर मानसको गमन करना कर्त्तव्य है। वहां जाकर कुश लेकर हाथसे माथेपर जल डालकर इस मन्त्रसे वहां स्नान करे;—आत्मशुद्धि, पितरोंके सूर्यलोक, आदिके गमन और मुक्तिके लिये मैं उत्तर मानस तीर्थमें स्नान करता हूं। १-२। पीछे यहींपर देवतादि सबका तर्पण करके श्राद्धादि पिण्डदान करे; यह सरोवर ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुआ, इसीसे उत्तर मानस कहलाता है। ३। इस स्थानमें भास्करको प्रणाम करके पितरलोग सूर्यलोकमें जाते हैं। नमस्कारका मन्त्र यह है, सूर्य-चन्द्र-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-राहु और केतुरूपी भास्करको नमस्कार है।४।

पितॄन् ॥ ४ ॥ उत्तरान्मानसान्मौनी व्रजेद्दक्षिणमानसं। उदीची च महापुण्या तत्रोदीच्यं विमुक्तिदं। अत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः ॥ ५ ॥ मध्ये कनखलं तीर्थं पितॄणां मुक्तिदायकं। स्नातः कनकवज्ज्ञाति नरो याति पवित्रतां। स्नातः कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते। अतः कनखलं लोके ख्यातं तीर्थमनुत्तमं ॥ ६ ॥ तस्य दक्षिणभागे च तीर्थं दक्षिणमानसं। दक्षिणे मानसे चैव तीर्थत्रयमुदाहृतः। स्नात्वा तेषु विधानेन कुर्य्यात् श्राद्धं पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥ ब्रह्महत्यादिपापौघ-घातनाय विमुक्तये। दिवाकर

उत्तर मानससे मौनी होकर दक्षिण मानसको जावे वहां उत्तरकी ओर मुक्तिका देनेवाला उदीची नामक महापुण्य तीर्थ है; वहां स्नान करनेसे सशरीर स्वर्गको जाता है। ५। दक्षिण मानसके मध्यस्थलमें कनखल नामक तीर्थ हैं, यह पितरोंको मोक्ष देता है। कनखल तीर्थमें स्नान करनेसे पुनर्जन्म दूर होता है। कनखलमें स्नान करनेसे देह सुवर्णका वर्ण धारण करती है और अति विशुद्ध हो जाती है। इसी लिये कनखल अति उत्तम तीर्थ कहलाकर जगतमें प्रसिद्ध है। इसीके दक्षिण भागमें दक्षिण मानस नामक तीर्थ है, पर ये तीनो ही तीर्थ दक्षिण मानस कहलाते हैं। इसी लिये यहां पृथक पृथक स्नान और श्राद्धादि करना होता है। ६-७। स्नानका

करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे॥ ८॥ नमामि सूर्य्यं तृप्त्यर्थं पितृणां तारणाय च। पुत्रपौत्रधनैश्वर्य्या-यायुरारोग्यवृद्धये॥ ९॥ फल्गुतीर्थं व्रजेत्तस्मात् सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तमं। मुक्तिर्भवति पितृणां कर्त्तृणां श्राद्धतः सदा॥ १०॥ ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुः फल्गुको ह्यभवत् पुरा। दक्षिणाग्नौ हुतं तत्र तद्रजः फल्गु-तीर्थकं॥ ११॥ तस्मिन् फलति फल्गुर्गौः कामधेनु-र्जलं मही। दृष्टेरन्तर्गतं यस्मात् फल्गुतीर्थं

मन्त्र यह है,—आत्मशुद्धि और पितरोंको आदित्यादि लोक प्राप्तिपूर्वक मैं दक्षिण मानसमें स्नान करता हूं। हे सूर्य! ब्रह्महत्यादि पातकपुञ्जका नाश करता हुआ मुक्तिके लिये मैं इस दक्षिण मानसमें स्नान करता हूं।८। सूर्यके प्रणामका मन्त्र यह है,—हे सूर्यदेव! अपने पितरोंकी तृप्ति और परि-त्राणके लिये और अपने निज पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, आयु आरोग्य प्रभृतिकी वृद्धिके लिये आपको नमस्कार करता हूं।९। पीछे वहांसे जाकर सर्वतीर्थमें प्रधान फल्गु तीर्थको जावे; वहां श्राद्धकर्त्ता पितरोंके साथ मुक्तिलाभ करे।१०। पूर्वकालमें ब्रह्माकी प्रर्थनाको सुनके स्वयं हरि फल्गु तीर्थका रूप धरके अवतीर्ण हुए थे। दक्षिणाग्निमें यज्ञके समय जो आहुति प्रदानकी थी,उसीसे फल्गुकी उत्पति हुई थी।११। पृथ्वीरूप कपिला कामधनुके रूप जल दूध सर्वदा लोगोंको आशाति-

न निष्फलं ॥ १२ ॥ तीर्थानि यानि सर्व्वाणि भुवनेष्वखिलेष्वपि। तानि स्नातुं समायान्ति फल्गुतीर्थं सुरैः सह ॥ १३ ॥ गङ्गा पादोदकं विष्णुः फल्गुर्ह्यादिगदाधरः। स्वयं हि द्रवरूपेण तस्मात् गङ्गाधिकं विदुः ॥ १४ ॥ अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत्। नासौ तत् फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्नुयात् ॥ १५ ॥ फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोमि स्नानमादृतः। पितृणां विष्णुलोकाय भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥ १६ ॥ फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत् ॥ सपिण्डकं स्वसूत्रोक्तं

रिक्त मनोरथ अर्पण किया करता है। १२। निखिलतीर्थमें जितने तीर्थ हैं,वे चाहे जहां रहें,—पर उन सबको इस मनोहर फल्गु तीर्थमें स्नानके लिये आना पड़ता है। १३। जिस गङ्गा तीर्थकी इतनी महिमा है, वह गङ्गा जिस विष्णुके चरणका जल हैं, वही साक्षात् हरि स्वयं द्रव होकर फल्गुरूपसे अवतीर्ण हुए हैं; इसीसे गङ्गासे फल्गुकी महिमा अधिक है ।१४। सहस्र सहस्र अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी फल्गुतीर्थमें स्नान करनेके तुल्य फल नहीं होता हैं । १५। फल्गुतीर्थमें स्नानका मन्त्र यह है;—पितरोंको ब्रह्मलोक प्राप्ति और निज भोग और मोक्षकी कामना करके फग्गुतीर्थके हरि रूप जलमें मैं सादर स्नान करता हूं । १६। फल्गुतीर्थमें स्नान और तर्पण करके अपनी अपनी वेदशाखाके अनुसार श्राद्धादि पिण्डदान करके

नमेदथ पितामहं ॥ १७ ॥ नमः शिवाय देवाय ईशाय पुरुषाय च। अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे ॥१८॥ फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरं। आत्मानं तारयेत् सद्यो दश पूर्व्वान् दशापरान् ॥ १९ ॥ नत्वा गदाधरं देवं मस्तेयानेन पूजयेत्। ओँ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे। पञ्चतीर्थे नरःस्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ २० ॥ अमृतैः पञ्चभिः स्नानं पुष्पवस्त्राद्यलङ्कृतं। न कुर्य्यात् यो गदापाणेस्तस्य श्राद्धमनर्थकं ॥ २१ ॥ नागकुटात् गृध्रकूटाद् यूपादुत्तरमा-

---

पितामह ब्रह्माको नमस्कार करे। १७। हे देव! तुम शिव हो, सद्योजात, शम्भु, अघोर, वामदेव, ईशान और पुरुष हो, तुमको नमस्कार करता हूं। १८। लोग फल्गुतीर्थमें स्नान और गदाधर देवको निरखकर शीघ्र ही अपनेको और पूर्व्ववर्ती दश पुरुषों और परवर्त्ती दश पुरुषोंको परित्राण करते हैं। १६। पीछे गदाधर देवकी अर्चना करके इस मन्त्रसे नमस्कार करे; यथा,—हे वासुदेव! तुम सङ्कर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युन्न, श्रीधर और विष्णु हो, तुमको नमस्कार करता हूं। पञ्चतीर्थमें स्नान करके पितर लोग ब्रह्मलोकमें प्रस्थान करते हैं। २०। गदाधरको पञ्चामृतसे अभिषिक्त और पुष्पवस्त्र आदिके द्वारा शोभित न करनेसे मनुष्यका गयाश्राद्ध विफल होता है। २१।

नगात्। एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थन्तदुच्यते ॥२२ प्रथमेऽह्नि विधिः प्रोक्तो द्वितीये दिवसे व्रजेत्। धर्म्मारण्यं तत्र धर्म्मो यस्माद्यज्ञमकारयत्। मतङ्गवाप्यां यः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत्। गत्वा नत्वा मतङ्गेश-मिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २४ ॥ प्रमाणं सन्तु मे देवा लोकपालाश्च साक्षिणः। मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितृणां निष्कृतिः कृता ॥ २५ ॥ पूर्व्वं हि ब्रह्मतीर्थे च कूपे श्राद्धादि कारयेत्। तत्कूपयूपयोर्मध्ये सर्व्वांस्तारयते पितॄन् ॥ २६ ॥ धर्म्मं धर्म्मेश्वरं नत्वा

नागकूटसे गृध्रकूटतक और ब्रह्मयूपसे उत्तर मानसतकके स्थानका नाम गयाशिर है; इसीको फल्गुतीर्थ कहते हैं।२२। पहले दिनकी यह विधि कही गई। दूसरे दिन धर्म्मारण्यको जावे। वहां धर्म्मराजने यज्ञ किया था। वहां गमन करनेसे ब्रह्मलोक मिलता है।२३। वहां मतङ्गवापीमें स्नान, तर्पण और श्राद्ध करे और मतङ्गेशनामक महेशके समीप जाकर यह मन्त्र उच्चारण करता हुआ नमस्कार करे, यथा;—हे देवगण और लोकपालगण! तुमको नमस्कार; तुम लोग सब साक्षी हो, मैंने इस मतङ्ग तीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार किया। २४—२५। इस तीर्थपर कुए हीमें स्नान करना होता है; इस कूप और यूपके मध्यस्थ स्थलमें श्राद्ध करनेसे भी पितर कुलका परित्राण होता है। २६। पीछे धर्म्म और धर्म्म-

महाबोधितरुं नमेत् । नमस्तेऽश्वत्थराजाय ब्रह्मा-विष्णुशिवात्मने । बोधद्रुमाय पितृणां कर्तृणां तारणाय च ॥ २७ ॥ येऽस्मत्कुले मातृवंशे बान्धवा दुर्गतिं गता । तद्दर्शनात् स्पर्शनाच्च स्वर्गतिं यान्तु शाश्वतीं ॥ १८ ॥ ऋणत्रयं मया दत्तं गयामागत्य वृक्षराट् । त्वत्प्रसादान्महापापाद्विमुक्तोऽहं भवार्णवात् ॥ २९ ॥ चलद्दलाय वृक्षाय अश्वत्थाय नमो नमः । बोधिसत्वाय यज्ञाय अश्वत्थाय नमो नमः ॥ ३० ॥ एकादशोऽसि रुद्राणां वसूनां पावकस्तथा । नारायणोऽसि देवानां वृक्षराजोऽसि

श्वर शिवको नमस्कार करके महाबोधि वृक्षको यह कहकर नमस्कार करे, हे अश्वत्थराज ! तुम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपी हो, तुम्हारा नाम बोधद्रुम है, तुम पितर और श्राद्ध करनेवाले-का उद्धार करनेवाले हो, तुमको नमस्कार है। २७। मेरे पित-रोंके कुलमें जिन सब बान्धवोंने दुर्गति पाई है, तुम्हारे दर्शन और स्पर्शनसे उनको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हुआ करता है। २८। हे तरुराज ! मैं गयामें आगमन करके तुम्हारे अनुग्रहसे तीनो ऋणसे और महापातकसे और संसारसागरसे मुक्ति पा जाऊं। २६। निरन्तर भगवान्की स्थितिके कारण तुम चञ्चल हो, तुम ज्ञानस्वरूप हो, तुम यज्ञस्वरूप हो, हे अश्वत्थ वृक्ष ! तुमको पुनः पुनः प्रणाम करते हैं। ३०। तुम रुद्रोंके बीचमें

पिप्पल ॥ २१ ॥ अश्वत्थ यस्मात्त्वयि वृक्षराज, नारायणस्तिष्ठति सर्व्वकालं अतः शुभस्त्वं सततं तरूणां, धन्योऽसि दुःखप्नविनाशनोऽसि ॥ २१ ॥ अश्वत्थरूपिणं देवं शङ्खचक्रगदाधरं। नमामि पुण्डरीकाक्षं वृक्षरूपधरं हरिं ॥ २३ ॥ तृतीये ब्रह्मसरसि स्नात्वा श्राद्धं सपिण्डकं। कृत्वा सर्व्वप्रमाणेन मन्त्रेण विधिवत् कृतं ॥ २४ ॥ स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन् ऋणत्रयविमुक्तये। तत्कूपयूपयोर्मध्ये ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥२५

यागं कृतोच्छ्रितौ यूपौ ब्रह्मणा यूप इत्यसौ। कृत्वा

एकादश रुद्र हो, अष्टवसुओंके बीचमें पावक हो, देवताओंके मध्यमें नारायण हो। हे वृक्षराज! तुमको प्रणाम है। २१। पीछे इस मन्त्रसे प्रार्थना करे, यथा;—हे अश्वत्थ वृक्षराज! तुममें नारायण निरन्तर अधिष्ठान करते हैं; इस लिये वृक्षोंके बीचमें तुम मङ्गलदायक और धन्य हो, हमारे दुःस्वप्नको दूर करो। २२! शङ्खहस्त गदापाणि देव अश्वत्थवृक्षके रूपसे विराजमान हैं, सो हे वृक्षरूपधारी पुण्डरीकाक्ष! तुमको नमस्कार है! २३। तीसरे दिन ब्रह्मसरोवरमें स्नान करके श्राद्ध करे, स्नानका मन्त्र यह है;—ऋणत्रयसे मुक्तिलाभके लिये इस तीर्थमें स्नान करता हूं। पीछे यहां कूप और यूपके मध्यमें स्थित मृत्तिकापर पिण्डदान करनेसे पितर लोग ब्रह्मलोकगामी होते हैं। २४—२५। ब्रह्माके यज्ञस्थानमें यहां यूप

ब्रह्मसरःश्राद्धं सर्व्वांस्तारयते पितॄन्॥ ३६ ॥ यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत्। ब्रह्माणञ्च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्॥ ३७॥ नमोऽस्तु ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिकारिणे। भक्तानञ्च पितॄणाञ्च तारकाय नमो नमः ॥ ३८ ॥ गोप्रचारसमीपस्था आम्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः। तेषां सेचनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः ॥ ३९ ॥ आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं सर्व्वदेव-मयं तरुम्। विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां मुक्तिहेतवे॥ ४० ॥ एको मौनी कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य

गाड़ा गया था, इसीके लिये इसका नाम ब्रह्मयूप है। इस ब्रह्मसरोवरमें श्राद्ध करके पितर ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ३६। यहां इस यूपकी प्रदक्षिणा करके पितरलोग ब्रह्मपुरमें जाते हैं। ३७। ब्रह्मके नमस्कारका मन्त्र यह है,—हे ब्रह्मन्! तुमको नमस्कार है; हे अज! तुमको नमस्कार है, तुम्हीं जगत्के आदिकारण एवं भक्त तथा पितरोंके तारनेवाले हो। ३८। यहां गोप्रचारके समीप ब्रह्माके बनाये हुए आम्रवृक्षोंके समूह हैं, उनके मूलमें जलप्रदान करनेसे पितरलोग मुक्ति पाते हैं। ३९। मन्त्र यह है,—हे आम्रवृक्ष! तुम ब्रह्मसरोवरसे उत्पन्न हुए हो, तुम सर्व्वदेवमय वृक्ष हो और विष्णुके स्वरूप हो, अपने पितरोंकी मुक्तिके लिये तुम्हारे मूलमें जलदान करते हैं। ४०। एकाकी मौनी होकर कुशाग्र हस्तसे कुम्भ लेकर आम्रके मूलमें

मूले सलिलं ददामि। आम्रस्य सिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥ ४१ ॥ ततो यमवलिं दद्यात् मन्त्रेणानेन संयतः। यमराजधर्म्मराजौ निश्चलार्थव्यवस्थितौ। ताभ्यां वलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥ ४२ ॥ ततः श्वानवलिं दद्यात् मन्त्रेणानेन नारद। द्वौ श्वानौ श्यामशवलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ। ताभ्यां वलिं प्रयच्छामि रक्षेतां पथि सर्व्वदा ॥ ४३ ॥ ततः काकवलिं क्षिप्त्रा मन्त्रेणानेन नारद। ऐन्द्रवारुणवायव्यां याम्यां वै नैर्ऋतीन्तथा। वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं समर्पितम् ॥ ४४ ॥ फल्गुतीर्थे

जल देता हूं, आम्रवृक्ष भी सिक्त हुआ, मेरे पितर भी प्रीत हुए; इस एक ही क्रियासे दो फल उत्पन्न हुए। ४१। पीछे इस मन्त्रसे चित्त संयत करके यमको वलि देवे, यथा;—हे यमराज! आपलोग गयासुरको निश्चल करनेके लियेही अधिष्ठान करते हैं, अपने पितरोंकी मुक्तिके लिये मैं यह वलि अर्पण करता हूं। ४२। हे नारद! पीछे इस मन्त्रसे वहां श्वानवलि देवे, यथा; धर्मराजके अनुचर, वैवस्वत कुलोद्भव श्याम और धवल नामक दो कुत्तोंको मैं यह वलि प्रदान करता हूं, आप इससे डरकार मेरे पितरोंके पथके विघ्नको दूर करिये। ४३। हे नारद! तत्पश्चात् वहां इस मन्त्रसे काकवलि देवे, यथा;—पूर्व, पश्चिम, वायु, दक्षिण और नैऋत प्रभृति दिशा-

चतुर्थेऽह्नि स्नानादिकमथाचरेत्। गयाशिरस्यथ श्राद्धं पादे कुर्य्यात् सपिण्डकम्। साक्षाद् गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रयं कृतम्॥ ४५॥ नागाज्जनार्द्दनाद्‌-ब्रह्मयूपाच्चोत्तरमानसात्। एतद् गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते॥ ४६॥ पितामहं समासाद्य याव-दुत्तरमानसम्। फल्गुतीर्थन्तु विज्ञेयं देवानामपि दुर्लभम्॥४७॥ क्रौञ्चपादात् फल्गुतीर्थं यावत् साक्षात् गयाशिरः। मुखं गयासुरस्यैतत्तस्मात् श्राद्धमिहा-क्षयम्॥ ४८॥ मुण्डपृष्ठो नगाद्याश्च साक्षात् तत्

ओंमें स्थित काकगण मेरे दिये हुए इस पिण्डको ग्रहण करें। ।४४। चौथे दिन फल्गुतीर्थमें स्नान आदिकी समाप्ति करते हुए गयाशिरमें स्थित सब पदचिन्होंमें श्राद्धादि पिण्डदान करे, इस स्थानमें गयाशिर स्वयं फल्गुतीर्थके आश्रयमें रहा है।४५। नागगिरि, जनार्दन, ब्रह्मयूप और उत्तर मानस इस चतुः-सीमाके मध्यस्थ स्थानको गयाशिर और फल्गुतीर्थ कहते हैं ।४६। पितामहसे लेकर उत्तर मानसपर्यन्त फल्गुतीर्थ देवता ओंको भी दुष्प्राप्य है।४७। क्रौञ्चपादसे लेकर फल्गुतीर्थ तक सभीस्थानोमें साक्षात् गयाशिर है और गयाशिरमें सब पर्वत आदि साक्षात् फल्गुतीर्थ हैं, यही सब गयासुरका मुख है, इस लिये यहांका श्राद्ध अक्षय फलप्रद है।४८। यहां आदिगदाधर देव पितरोंके परित्राणके लिये विष्णुपद आदि

फल्गुतीर्थकम्। आद्यो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः। विष्ण्वादिपदरूपेण पितॄणां मुक्तिहेतवे॥ ४९॥ एतद्विष्णुपदं दिव्यं दर्शनात् पापनाशनम्। स्पर्शनात् पूजनाद्वापि पितॄणाञ्च विमुक्तिदम्॥ ५०॥ श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा तुलसाहस्रमात्मना। नयेत् विष्णुपदं दिव्यमनन्तं शिवमव्ययम्॥ ५१॥ श्राद्धं कृत्वा रुद्रपदे नयेत् कुलशतं नरः। महात्मानं शिवपुरं तथा ब्रह्मपदे नरः। ब्रह्मलोकं कुलशतं समुद्धृत्य नयेत् पितॄन्॥ ५२॥ कश्यपस्य पदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्। दक्षिणाग्निपदे श्राद्धी पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत्॥ गार्हपत्यपदे श्राद्धी वाजपेयफलं लभेत्। श्राद्धश्चाहवनीये तु वाजिमेधफलं लभेत्॥ ५४॥ श्राद्धं कृत्वा सभ्यपदे ज्योतिष्टोमफलं लभेत्। आवसथ्यपदे श्राद्धी

रूप धारण करके व्यक्ताव्यक्त रूपसे अधिष्ठान करते हैं। ४९। यहां विष्णुपद अतिरम्य है, इनका दर्शन करनेसे पाप दूर होता है, स्पर्श और पूजा करनेसे पितरोंकी ब्रह्मलोकप्राप्ति होती है। दक्षिणाग्निपदमें श्राद्ध करनेसे वाजपेय फल होता है। ५३। गार्हपत्य पदमें श्राद्ध करनेसे अश्वमेध यज्ञफल होता है, आहवनीय पदमें श्राद्ध करनेसे राजसूय फल लाभ होता है। ५४। सभ्यपदमें श्राद्ध करनेसे ज्योतिष्टोम फल मिलता है। आवसथ्य

सोमलोकमवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ श्राद्धं कृत्वा गलुपदे इन्द्रलोकं नयेत् पितॄन्। अगस्त्यस्य पदे श्राद्धी पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ५६ ॥ क्रौञ्चमतङ्गयोः श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्। श्राद्धी सूर्य्यपदे पञ्चपापिनोऽर्कपुरं नयेत् ॥ ५७ ॥ कार्त्तिकेयपदे श्राद्धी शिवलोकं नयेत् पितॄन्। गणेशस्य पदे श्राद्धी रुद्रलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५८ ॥ गजकर्णपदे श्राद्धी तर्पणात् स्वर्नयेत् पितॄन्। अन्येषाञ्च पदे श्राद्धी पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ सर्वेषां काश्यपं श्रेष्ठं विष्णो रुद्रस्य वा पदम्। ब्रह्मणश्च पदं चापि श्रेष्ठं तत्र प्रकीर्त्तितम् ॥ ६० ॥ प्रारम्भे च

पदमें श्राद्ध करनेसे सोमलोक मिलता है। ५५। इन्द्रपदमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको इन्द्रलोककी प्राप्ति और अगस्त्य पदमें श्राद्ध करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। ५६। क्रौञ्च और मतङ्गके पदमें श्राद्ध करनेसे पितरलोग ब्रह्मलोकगामी होते हैं। सूर्यके पदमें श्राद्ध करनेसे पञ्चपातकीका कुल सूर्यधाम लाभ करता है। ५७। कार्त्तिकेय पदमें श्राद्ध करनेसे पितरोंकी शिव-धाम-प्राप्ति होती है। गणेश पदमें श्राद्ध करनेसे रुद्रलोक मिलता है। ५८। गजकर्णके पदमें तर्पण करनेसे पितरलोग स्वर्गगामी होते हैं। अन्यान्य पदोंमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धकारियोंके पितर ब्रह्मपुरमें जाते हैं। ५९। सबके बीचमें कश्यप, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मपद ही प्रधान है। ६०। हे नारद!

समाप्तौ च तेषामन्यतमं स्मृतम्। श्रेयस्करं भवेत्तत्र श्राद्धकर्त्तुश्च नारद॥ ६१॥ कश्यपस्य पदे दिव्ये भरद्वाजो महामुनिः। श्राद्धं कृत्वोद्यतो दातुं पित्रादिभ्यश्च पिण्डकम्॥ ६२॥ शुक्लकृष्णौ ततो हस्तौ पदमुद्भिद्य निर्गतौ। दृष्ट्वा हस्तद्वयं तत्र पित्रोः संशयमागतः॥६३ ततः स्वमातरं शान्तां पप्रच्छ स महामुनिः। कश्यपस्य पदे कस्मिन् शुक्ले कृष्णेऽथवा करे। पिण्डो देयो मया मातर्जानासि पितरं वद॥ ६४॥ शान्तोवाच। भरद्वाज महाप्राज्ञ देहि कृष्णाय पिण्डकम्। भरद्वाजस्ततः पिण्डं दातुं कृष्णाय चोद्यतः॥ ६५॥ श्वेतोऽ-

---

अतएव इसके चाहे जौनसे पदमें आरम्भ वा समाप्तिके समय श्राद्ध करनेसे कल्याण मिला करता है। ६१। आगे कश्यपके पदमें भरद्वाज ऋषिके श्राद्ध-क्रिया-पूर्वक पितरोंके पिण्डदानमें उद्यत होनेपर उस पदमें शुक्ल और कृष्ण वर्णके दो हस्त बाहिर हुए थे। दो हाथ देखकर पिता मातापर सन्देह हुआ, सो अपनी माता शान्ताको पूंछा, हे जननि! कश्यपके पदसे श्वेत और कृष्णवर्ण दो कर बाहिर हुए हैं, उनमें किसपर मैं पिण्ड दान करूं? कौनसा मेरे बापका हाथ है? ६२-६३। शान्ता बोली, हे महाबुद्धे भरद्वाज! तुम कृष्णवर्ण हाथहीमें पिण्ड दो। उस समय भरद्वाज कृष्ण करमें पिण्डदानपर उद्यत हुए; तब शुक्ल हस्तने अन्तर्धान होकर कहा, तुम मेरे औरस-

हस्थोऽब्रवीत्तत्र पुत्रस्त्वं हि ममौरसः। कृष्णोऽब्रवीन्मम चेत्रं ततो मे देहि पिण्डकम्॥ ६६॥ खैरिण्यथाब्रवीद्दातुं चेत्रिणे बीजिने ततः। भरद्वाजस्ततः पिण्डं कश्यपस्य पदे ददौ। हंसयुक्तविमानेन ब्रह्मलोकमुभौ गतौ॥ ६७॥ भीष्मो विष्णुपदे दिव्ये आहूय पितरं स्वकम्। श्राद्धं कृत्वा विधानेन पिण्डदानाय चोद्यतः॥ ६८॥ पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ गयाशिरसि शान्तनोः। नाद्दात् पिण्डं करे भीष्मो ददौ विष्णुपदे ततः॥ ६९॥ शान्तनुः प्राह सन्तुष्टः शास्त्रार्थे निश्चलो भवान्। त्रिकालदृष्टिर्भवतु चान्ते विष्णुश्च ते गतिः। स्वेच्छया

में जन्मे हो, सो मुझे पिण्डदान करो। श्याम हस्त बोला,
पिण्डदान करो। ६५ ६६। इसपर
स्वैरिणीने कहा, तुम दोनोंही को—(चेत्र और बीजी दोनोंको) पिण्ड अर्पण करो। परन्तु भरद्वाजने दोनोंमेंसे किसीको पिण्ड न देकर कश्यप प पदपर पिण्ड दिया, उससे दोनोंही हंसयुक्त विमानपर आरोहण करके ब्रह्मधाममें चले गये। ६७। उत्तम विष्णुपदमें भीष्म यथाविधि श्राद्ध करके ज्यों ही पिण्ड देनेको उद्यत हुए त्योंही उनके पिता शान्तनुने गयासुरसे हाथ बाहिर निकाले, किन्तु हाथमें पिण्ड न देनेका अधिकार न रहनेसे भीष्म विष्णुपदमें पिण्डदान किया। ६८-७६। तब शान्तनुने प्रीत होकर कहा, शास्त्रार्थमें तुम्हारी बुद्धि दृढ़ है

दरणां वास्तु इत्युक्त्वा मुक्तिमागतः ॥ ७० ॥ रामो रुद्र-गदे श्राद्धे पिण्डदानाय चोद्यतः। पिता दशरथः स्वर्गात् प्रसार्य करमागतः ॥ ७१ ॥ नादात् पिण्डं करे रामो ददौ रुद्रपदे ततः। शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीतं रामं दशरथोऽब्रवीत् ॥ ७२ ॥ तारितोऽहं त्वया पुत्र रुद्रलोक-मवाप्नुयात्। हस्ते पिण्डप्रदानेन सुगतिर्नहि मे भवेत् ॥ ७३ ॥ त्वञ्च राज्यं चिरं कृत्वा पालयित्वा द्विजान् प्रजाः। यज्ञान् सदक्षिणान् कृत्वा विष्णुलोकं गमि-ष्यसि ॥ ७४ ॥ पुर्य्ययोध्या-जनैः सार्द्धं कृमिकीटादिभिः सह। इत्युक्त्वासौ दशरथो रुद्रलोकं परं ययौ ॥७५॥

और तुम्हारी दृष्टि त्रिकालदर्शिनी हो स्वेच्छामृत्यु और परिणाममें हरिसे तुम्हारी मति हो, यह कहकर वह मुक्त हुए। ७०। रामचन्द्रने रुद्रपदमें श्राद्धकाल पिण्डदान करनेको उद्यत होनेपर उ के पिता दशरथ नृपतिने स्वर्गसे आकर हाथ फैलाया था, किन्तु शास्त्रार्थ-लङ्घनमें त्रस्त होकर होकर रामने पितृकरमें पिण्डदान न करके रुद्रपदमें दान किया, उससे दशरथने उनको कहा, वत्स! तुम्हारे द्वारा परित्राण पाकर मैंने शिवधाम पाया, मेरे हाथमें पिण्ड देनेसे ऐसी सद्गति नहीं होती। तुम ब्राह्मणादि प्रजाओंको पालन करके दीर्घकालतक राज्यभोग करके सदक्षिण यज्ञ सम्पन्न करोगे और अयोध्या पुरीके लोग और कृमिकीटादिसहित

कनकेशञ्च केदारं नारसिंहञ्च वामनम् । उत्तरमार्गे समभ्यर्च्च्य पितॄन् सर्व्वांश्च तारयेत् ॥ ७६ ॥ गयाशिरसि यः पिण्डान् येषां नाम्ना तु निर्व्वपेत् । नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥ ७७ ॥ सर्व्वत्र मुण्डपृष्ठाद्रिः पदैरेभिः सुलक्षितः । प्रयान्ति पितरः सर्व्वे ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ७८ ॥ हेत्यसुरस्य यच्छीर्षं गदया तद् द्विधाकृतम् । ततः प्रक्षालिता यस्मात्तीर्थे तच्च विमुक्तये । गदालोलमिति ख्यातं सर्व्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ ७९ ॥ गदालोले महातीर्थे गदा प्रक्षालनाद्धरेः । स्नानं करोमि सिद्धर्थ-मक्षयाय स्वराप्तये ॥८०

विष्णुलोकको गमन करोगे, दशरथने यह कहके श्रेष्ठ शिवलोकमें गमन किया । ७५ । कनकेश केदार नारसिंह और वामनको उत्तर मार्गमें पूजा करनेसे पितृलोगोंका परित्राण होता है । ७६ । गयाके शिरपर जिसके नामसे पिण्ड दिया जाय वह नरकमे होने से स्वर्गको और स्वर्गमे रहनेसे मोक्षको प्राप्त होता है । ७७ । मुण्डपृष्ठ पर्वतके गात्रमे जो पदचिन्ह है, उनमे पिण्ड पड़नेसे पितृलोग रोगरहित ब्रह्मलोकमें प्रस्थान करेंगे । ७८ । हेती नामक असुरका मस्तक गदासे द्विखण्डित होने पर जिस तीर्थमें वह गदा धोई गई, उस मुक्ति प्रद महातीर्थका गदालोल नाम हुआ । ७९ । श्रीहरिको गदा धोनेके निमित्त गदालोल नाम हुआ है ; अक्षय स्वर्ग प्राप्तिके निमित्त मैं वहां

पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा कुर्य्यात् सपिण्डकम्। श्राद्धं पितॄन् ब्रह्मलोकं नयेदात्मानमेव च ॥ ८१ ॥ कृते श्राद्धेऽक्षयवटे अन्नेनैव प्रयत्नतः। पितॄन्नयेत् ब्रह्मलोकमक्षयन्तु सनातनं ॥ ८२ ॥ ब्रह्मप्रकल्पितान् विप्रान् हव्यकव्यादिनार्च्चयेत्। तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्व्वाः पितृभिःसह देवताः ॥ ८३ ॥ वटवृक्षसमीपे तु शाकेनाप्युदकेन वा। एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥ ८४ ॥ देयं दानं षोड़शकं गयातीर्थपुरोहसे। वस्त्रं गन्धादिभिस्तत्र सम्यक् संपूज्य यत्नतः ॥ ८५ ॥ गयायां धर्म्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणा-

---

स्नान करता हूं। ८०। गदालोल में स्नानके पांचवें दिन सपिण्ड श्राद्ध करनेसे पितृसहित ब्रह्मलोकको गमन करता है। ८१। यत्नके सहित अन्नके द्वारा अक्षयवटमें श्राद्ध करनेसे पितृलोग अक्षय सनातन ब्रह्मलोकमे गमन करेंगे। ८२। ब्रह्माके सृष्ट ब्राह्मणोंको हव्यकव्यके द्वारा अर्चना करनेसे उनकी तुष्टिके सहित पितृलोग और देवता लोग भी परितोष लाभ करते हैं। ८३। वट वृक्षके निकट शाकान्न और जलमात्रसे एक विप्रका भोजन मानो कोटि विप्रके भोजनके तुल्य होता है। ८४। गयाके द्विजको वस्त्र गन्धादिसे अर्चना करके षोड़श दान करना चाहिये। ८५। गया क्षेत्रमे धर्म्मपृष्ठ,

स्तथा । गयाशीर्षे वटे चैव पितृणां दत्तमक्षयं ॥ ८६
दृष्ट्वा नत्वा च संपूज्य वटेशं सुसमाहितः । पितॄन्नयेद् ब्रह्म-लोकमक्षयन्तु सनातनं ॥ ८७ ॥ एकार्णवे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया । बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योग-शायिने ॥ ८८ ॥ संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापहराय च । अक्षयब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षयवटाय वै ॥ ८९ ॥ कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद् गदाधर । लिङ्गरूपोऽभवत्तञ्च वन्दे श्रीप्रपितामहं ॥ ९० ॥

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवराहकल्पे गयामाहात्म्ये पञ्चदिवसीयकृत्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्रह्मसरोवर, और अक्षय वटके काट पितृलोगोंके उद्देशमे दान अक्षय होता हैं । ८६ । भक्तिके साथ वटेश शिवकी पूजा प्रणति और दर्शन पितृलोगोंको अक्षय सनातन ब्रह्मलोकको ले जाता है । ८७ । प्रलय कालमें जो योगनिद्रा अवलम्बन करके वटपत्र पर सोये थे उस बालक रूपी योगशायी श्रीहरिको नमस्कार । ८८ । संसार रूप वृक्षोंके अस्त्रस्वरुप पापहारी अक्षय ब्रह्मलोकके देनेवाले अक्षयवटको नमस्कार । ८९ । कलियुगमे सर्वजनप्रभु गदाधर रूप धारण कर विराज करते हैं अतएव श्रीप्रपितामह देवको नमस्कार करता हूं । ९० ।

सप्तम अध्याय समाप्त ।

अष्टमोऽध्याय।

यज्ञञ्जे गयो राजा बह्वन्नं बहुदक्षिणं। यत्र द्रव्यसमूहानां संख्या कर्त्तुं न शक्यते॥ १॥ स्थिता गयायामन्नादि पर्व्वताः पञ्चविंशतिः। सिकता वा यथा लोके यथा च दिवि तारकाः। तथा ह्यसुवर्णा- देरसङ्ख्यातास्तु दक्षिणाः॥ २॥ नैव पूर्व्वं कोऽप्य- कुर्व्वन्न करिष्यन्ति चापरे। प्रशंसन्ति द्विजास्तृप्ता देशे देशे सुपूजिताः॥ ३॥ स्वयं विष्णाद्यस्तुष्टा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन्। गयस्तान् प्रार्थयामास अभिशप्ताश्च ये पुरा। ब्रह्मणा ते द्विजाः पूता भवन्तु क्रतुपूजिता॥४

गया राजाने बहु अन्न और बहु दक्षिणा युक्त एक यज्ञ किया; उसमे इतना द्रव्य संगृहीत हुआ, कि उसकी संख्या नहीं हो सकता है। १। गयामे अन्नके पचीस पर्वत हुए और जैसे मर्त्यमे वालुका और स्वर्गमें तारका उस प्रकारके बहु सुवर्णके असंख्य दक्षिणायें हुई; किसीने न ऐसा किया न करेगा; ब्राह्मण लोग पूजित होकर देश देशमे प्रशंसा करने लगे। २ ३। विष्णु आदि देवताओंने प्रसन्न होकर राजा गयको वर प्रार्थना करनेको कहा। गयने "पूर्व्व समयमें ब्रह्मा- कर्त्तृक अभिशप्त ब्राह्मणोंके पवित्रताका वर और ब्रह्मपुरीके तुल्य

गयापुरीति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा। एवमस्तु वरं दत्त्वा तथा चान्तर्दधुः सुराः। गयश्च भोगान् सम्भुज्य विष्णुलोकं परं ययौ॥ ५॥ विशालायां विशालोऽभूद्राजाऽपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान्। कथं पुत्रादयो मे स्युर्विशालं चाब्रुवन्द्विजाः॥ ६॥ गयायां पिण्ड-दानेन तत् सर्व्वञ्च भविष्यति। विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदः पुत्रवानभूत्॥ ७॥ दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत्। के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकं॥ ८॥ अहं सितस्ते जनकः इन्द्रलोकादि-हागतः। मम पुत्र! पिता रक्तो ब्रह्मघ्ना पापकृत्तमः॥९ अयं पितामहः कृष्ण ऋषयो येन घातिताः। अवीचि-

---

मेरे नामसे गया पुरीके होनेका वर" प्रार्थना किया; "ऐसाही हो" यह कहकर देवता अन्तर्धान हुए। ४-५। विशालादेशके राजा विशालने अपुत्र होनेके कारण ब्राह्मणोंको पूंछा "कौन उपायसे मेरे पुत्र होंगे"? उन्होंने कहा गयामे पिण्डदेनेसे वह सब होगा। विशालने भी गयाशिर पर पिण्ड देनेसे पुत्रलाभ किया। ६-७। शून्यमे श्वेत रक्त और कृष्णवर्णके पुरुष देखकर विशालने पुंछा, तुम लोग कौन हो? उनमेसे शुभ्रवर्णधारी पुरुष बोले, मैं तुम्हारा पिता हूं, इन्द्रलोकसे आताहूं, हे पुत्र लोहित वर्ण पुरुष मेरे पिता है, ब्राह्मणवधसे इन्होंने महा-

नरकः प्राप्तौ मुक्तौ त्वत्पिण्डदानतः ॥ १० ॥ पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्। प्रीणयामीति यत्तोयं त्वया दत्तमरिन्दम ॥ ११ ॥ तेनास्मद्युग-पद्योगो जातो वाक्यन सत्तम। मुक्तिः कृता त्वया पुत्र ब्रह्मामः स्वर्गमुत्तमं ॥ १२ ॥ त्वञ्च राज्यं चिरं कृत्वा भुक्त्वा भोगांश्च दुर्लभान्। यज्ञान् सदक्षिणान् कृत्वा चान्त मोक्षमवाप्स्यसि। एवं लब्धवरो राजा राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥ १३ ॥ प्रेतराजः सह प्रेतैर्गया-श्राद्धाद्दिवं गतः। प्रेतः कश्चिद्विमुक्त्यर्थं वणिजं कश्चिद-ब्रवीत्। मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्व्वापणं कुरु ॥१४

घातक किया है। इन कथा वर्णी मेरे पितामहने ऋषिलोगोंको मारा है। अवीचिनरकमें प्राप्त हुए वे दोनों तुम्हारे पिण्ड-दानके प्रभावसे मुक्त हुए हैं। १०। तुम्हारे प्रदत्त पिण्डदान-से तुम्हारे पिता, पितामह प्रपितामहोंको बड़ी प्रीति हुई, इस-से हम सब मुक्ति पाकर स्वर्गधामको जाते हैं। तुम भी बहुत दिनतक राज्यभोग सुखभोग और बदक्षिणा यज्ञ करके अन्तमे मोक्षको प्राप्त होगे। वर प्राप्त हुए राजा राज्य कर स्वर्गको पधारे। १२-१३। किसी प्रेत नृपतिने गया श्राद्धके उपरान्त प्रेतगणके सहित स्वर्गको गमन किया। किसी प्रेतने मोक्षके निमित्त किसी वणिकको कहा "गयाशिरपर मेरे नामका पिण्ड

प्रेतभावविमुक्त्यर्थं त्वं गृहाण धनं मम। तद्धनं सर्व्वमादाय गयाश्राद्धव्ययं कुरु॥ १५॥ षोड़शं पञ्चभागांश्च तुभ्यं वै दत्तवानहं। स्वनाम्नानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवानहं॥ १६॥ गत्वा गयां गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकं। प्रददौ अनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ॥ १७॥ प्रेतः प्रेतत्वनिर्म्मुक्तो वणिक् स्वगृहमागतः। एवं गयस्य मन्चीय क्षेत्रं विष्णो रवेस्तथा॥ १८॥ उपोषितोऽथ गायत्री तीर्थे महानदी स्थिते। गायत्र्याः पुरतः स्नात्वा प्रातःसन्ध्यां समाचरेत्। श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा नयेत् ब्रह्मक्षयतां कुलं॥ १९॥ तीर्थे समुद्रिते स्नात्वा सावित्र्या पुरतो नरः। सन्ध्या-

---

दान करो। १४। प्रेतयोनिसे विमुक्तिके निमित्त मेरे पाससे धन ग्रहण करो, और गया श्राद्धमे व्यय करो। १५। तुम षोड़श और पञ्चमांश ग्रहण करना। गयामे प्रेतराजके नामसे पिण्ड दिया, उसके उपरान्त अपने पितृगणको पिण्ड दिया। प्रेतका प्रेतत्व दूर हुआ, वणिक भी घर आये। अतएव शिव विष्णु सूर्य्यक्षेत्रके तुल्य गयाक्षेत्रको भी समझो। १६-१८। नदी स्थित गायत्री तीर्थमे उपवास करके गायत्री देवीके सन्मुख स्नानकर प्रातः सन्ध्या करे, फिर पिण्डदान करे तो पितृगण ब्रह्मलोकको प्राप्त हों। १९। समुद्रित तीर्थमें स्नान कर सावित्री देवीके सन्मुख

नुपास्य मध्याह्ने नयेत् कुलशतं दिवं। पिण्डदानं ततः कुर्य्यात् पितृणां मुक्तिकाम्यया ॥ २० ॥ प्राचीसरस्वतीतीर्थे स्नात्वा चापि यथाविधि। सन्ध्यामुपास्य सायाह्ने विष्णुलोकं नयेत् पितॄन्। बहुजन्मकृतात् सन्ध्यालोपान्मुक्तोऽखिलसन्ध्यकृत् ॥ २१ ॥ विशालायां लेलिहाने तीर्थे च भरताश्रमे। पादाङ्किते मुण्डपृष्ठे गदाधरसमीपतः ॥ २२ ॥ तीर्थे चाकाशगङ्गायां गिरिकर्णमुखेषु च। स्नातोऽथ पिण्डदो ब्रह्मलोकं कुलशतं नयेत् ॥ २३ ॥ देवनद्यां वैतरण्यां स्नातः स्वर्गं नयेत् पितॄन्। स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥२४॥ या सा वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता। साव-

---

मध्याह्न सन्ध्या उपासना और पिण्डदान करनेसे एक शत कुलका मोक्ष होता है। २०। सरस्वती तीर्थमें स्नान कर यथाविधि सायाह्न सन्ध्या करनेसे भी मुक्ति होती है। २१। विशाला, लेलिहान, भारताश्रम, पदाङ्कित मुण्डपृष्ठ, गदाधर समीप, आकाशगङ्गा, गिरिमुख आदि तीर्थोंमे स्नान और पिण्डदानसे एक सौ कुल ब्रह्मलोकको गमन करतेहै। २२-२३। देवनदी वैतरणीमें स्नानसे पितृलोग स्वर्ग गमन करते है। गो दान करनेसे एक विंशति कुल का उद्धार होता है। २४। वह त्रिलोकविख्याता नदी पितृलोगोंके मुक्तिके निमित्त गया-

तीर्थां गयांक्षेत्रे पितॄणां तारणाय वै॥ २५ त्रिरात्रोपोषणेनैव तीर्थाभिगमनेन च। अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो जायते नरः॥ २६॥ घृतकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी। शिलायाः सङ्गमो यत्र मधुस्रवा प्रकीर्त्तिता॥ २७॥ अयुतं चाश्वमेधानां स्नानकृल्लभते नरः। श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा पिण्डदानं तथैव च। कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः॥ २८॥ दशाश्वमेधिके हंसतीर्थे चामरकण्टके। कोटितीर्थे रुक्मकुण्डे पिण्डदः स्वर्न-येत् पितॄन्॥ २९॥ वैतरण्यां घृतकुल्यां मधुकुल्यां तथैव च। कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरञ्च

क्षेत्रमे अवतीर्ण हुई है। २५। त्रिरात्र उपवास और तीर्थ गमन करके स्वर्ण और गोदान न करे, तो मनुष्य दरिद्र हो जाय। २६। घृत कुल्या मधुकुल्या देविका और महानदी यहां धर्म्मशिलासे मिली हैं, वह मधुस्रवा कहाती है। २७। वहां स्नानकर पिण्ड दान करनेसे अयुत अश्वमेधका फल और शतकुलके उद्धारके उपरान्त विष्णुलोकमें गमन होता है। । २८, दशाश्वमेध, हंसतीर्थ, चामरकण्टक, कोटितीर्थ, रुक्म-कुण्डमे पिण्ड देनेसे पितृलोग स्वर्ग गमन करते हैं। २९। वैतरणी घृतकुल्या मधुकुल्या कोटीतीर्थमें स्नानान्तर कोटीश्वर

दः॥ ३० ॥ कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः। मार्कण्डेयेश कोटीशौ नत्वा स्यात् पितृतारकः॥ ३१ ॥ रुक्मपारिजातवने पार्व्वत्या सह शङ्करः। रहस्ये संस्थितो रेमे युगानामयुतं पुरा॥ ३२॥ मरीचिः फलपुष्पार्थं पारिजातवनं गतः। दृष्ट्वा शप्तो महेशेन यस्मात् सुखविघायकः॥३३॥ दुःखी भवेति तद्भीतो मरीचिस्तुष्टुवे शिवम्॥ ३४॥ शापाद्भवतु मुक्तिर्मे मरीचिः प्राह शङ्करम्। भवेद्गयायां मुक्तिस्ते शिवोक्तः प्रययौ गयां॥ ३५॥ शिलास्थितो तपस्तेपे सर्व्वेषां दुष्करञ्च यत्। मरीचिरीश्वराच्छप्तः कृष्णत्वमगात् पुरा॥ ३६॥ तपसा दारुणेनेह स विप्रः शुक्लतां

और मार्कण्डेयेश शिवके दर्शन और प्रणामसे विप्र वेदपारग धनाढ्य और पितृतारक होते हैं। ३०-३१। पुरा समयमें रुक्मपारिजात वनमे पार्वतीके साथ शङ्करजीने कोटि कोटि वत्सर विहार किया।३२। मरीचि फलफल लानेको पारिजात वनमें गये। महादेवजीने उनको देखकर सुखहारक दरिद्रता का शाप प्रदान किया। मरीचिने शिवको प्रसन्न करनेसे उन्होंने "उत्तम वर मागो" यह कहा। ३३-३४। मरीचिने "शापसे मैं छुटूं" शङ्करजीको कहा। "गयामें तुम्हारी मुक्ति होगी" सुनके वह गयाको गये। ३५। शिवके शापसे मरीचिने कृष्णवर्ण होकर

गतः। हरिस्तत्रैव मरीचिञ्च वरं त्वणु हि पुत्रक ॥ ३७ ॥ किमलभ्यं त्वयि तुष्टे मरीचिः प्राह माधवम्। हरशापाद्विमुक्तोऽहं शिला भवतु पावनी। पितृमुक्तिकरी च स्यात्तथेत्युक्त्वा दिवं गतः ॥ ३८ ॥ दिवौकसां पुष्करिणी समासाद्य नरः शुचिः। यत्र दत्तं पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमित्युत ॥ ३९ ॥ तत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः। पापत्यागं प्रकुर्वीतैव जीर्णत्वचमिवोरगः। तत् पञ्च वनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ ४० ॥ पाण्डुशिला वै तत्रास्ते श्राद्धं यत्राक्षयं भवेत्। युधिष्ठिरस्तु तस्यां हि श्राद्धं कर्त्तुं ययौ मुने ॥ ४१ ॥ श्राद्धकाले

शिलापर अवस्थान करके बहुत दुष्कर तपस्या की। ३६। और तपस्याकी दारुणतासे वह शुक्लवर्णको प्राप्त हुए। हरिने मरीचिको कहा, "पुत्र वर मांग" ।३७। मरीचिने माधवको कहा, आपकी तुष्टिसे मेरा अलाभ क्या रहा? हमको शिवशापसे मुक्त कीजिये और इस शिलाको पितृमोक्षकारी और पवित्र कीजिये"। ऐसाही हो, यह कहकर हरिजी स्वर्गको गये। ३८। शुचि होकर जो नर देवसरोवरमें पितृगणको पिण्ड देता है, वह अक्षय होता है। ३९। वहां स्नानसे मानव सशरीर स्वर्गको जाता है और सर्पके जीर्ण त्वचापरित्यागके तुल्य पापको छोड़ता है। ४०। वहां पाण्डुशिला है, यहां श्राद्ध करनेसे अक्षय होता है। यहां युधिष्ठिरने पिण्डदान किया

पाण्डुनोक्तं मद्धस्ते देहि पिण्डकं। हस्तं त्यक्त्वा शिलायाञ्च पिण्डदानं चकार च॥ ४२॥ शिलायां पिण्डदानेन प्रहृष्टो व्यासनन्दनः। वरं ददौ स्वपुत्राय राज्यं कुरु महीतले। अकण्टकञ्च सम्पूर्णमेकच्छत्रं सुपुत्रक॥४३॥ स्वर्गं व्रज शरीरेण भ्रातृभिः परिवारितः। दृष्टिमात्रेण संपूतान्नरकस्थान् दिवं नयन्‌त्यक्त्वा प्रययौ पाण्डुः शाश्वतं पदमव्ययं॥ ४४॥ निर्मथ्याग्निं शमीगर्भे विधिविष्ण्वादिभिः सह। लेभे पुत्रन्तु यज्ञेन त्रिषु लोकेषु विश्रुतं॥ ४५॥ मखसंज्ञन्तु तत्तीर्थं पितृणां मुक्तिदायकं। स्नात्वा च तर्पणं कृत्वा पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात्॥ ४६॥ पितॄन् स्वर्गं नयेन्नत्वा सङ्ग-

---

श्राद्ध समय पाण्डु बोले, मेरे हाथमें पिण्ड देओ। परन्तु युधिष्ठिर ने शिलापर पिण्ड दिया। उसपर पिण्डदेनेसे व्यासनन्दनने प्रसन्न होकर "पुत्र निष्कण्टक एकच्छत्र राजकरो" पुत्रको यह वर दिया। ४२-४३। "सशरीर सभ्रातृ स्वर्गगमन करो और नरकस्थ प्राणियोंको पवित्र करके स्वर्गके पथिक करो" यह कहके पाण्डु मोक्षधामको प्रस्थान किया। ४४। ब्रह्मा विष्णु आदिके सहित यज्ञ करके और अग्निको मथके त्रिलोक-विख्यात पुत्र लाभ किया। यज्ञ नामक उसी तीर्थमें पिण्डदान स्नान और तर्पणसे मोक्षप्राप्ति होती है। ४५—४६। मखसङ्ग-

सेऽङ्गारकेश्वरौ। गयाकूपे पिण्डदानादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ४७॥ भस्मकूपे भस्मना च स्नात्वा उत्तारयेत् पितॄन्। स्नातो नत्वा वशिष्ठेशं तत्तीर्थे चाश्वमेधभाक् ॥ ४८॥ इष्टिं चक्रेऽश्वमेधार्थं वशिष्ठो मुनिसत्तम। इष्टितो निर्गतः शम्भुर्वरं वृणु वशिष्ठक ॥ ४९ प्राहेति तं वशिष्ठोऽपि शिव तुष्टोऽसि मे यदि। वस्तव्यं चात्र देवेश तथेत्युक्त्वा शिवः स्थितः ॥ ५०॥ पिण्डदो धेनुकारण्ये कामधेनुपदेषु च। स्नात्वा नत्वाश्च संपूज्य ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५१॥ कर्द्दमाले गयानाभौ मुण्डपृष्ठसमीपतः। स्नात्वा श्राद्धा-

---

मसें अङ्गारकेश्वरको प्रणाम करनेसे पितृलोग स्वर्गगमन करते हैं, गयाकूपमें पिण्डदानसे अश्वमेधका फल लाभ होता है ।४७। भस्मकूपमें भस्माङ्ग होनेसे पितृलोग मोक्षप्राप्त होते हैं। स्नान करके वशिष्ठेश शिवको प्रणामसे अश्वमेधका फल होता है ।४८। मुनिप्रधान वशिष्ठने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञसे निकलकर शिवजीने वशिष्ठको "वर मांगो" कहा। ४६। वशिष्ठने कहा, "आपतुष्ट हुए हो,तो यहां वास कीजिये"; ऐसाही हो कहकर शिवजीने अवस्थान किया। ५०। धेनुकारण्य और कामधेनु पदमें स्नान और पिण्डदान और प्रणामके करनेसे पितृलोग ब्रह्म लोकको गमन करते हैं। ५१। कर्द्दमाल गयानाभि मुण्डपृष्ठमें

दिकं कृत्वा पितृणामनृणो भवेत् ॥ ५२ ॥ फल्गुचण्डी श्मशानाख्या मङ्गलायाः समर्च्चयेत्। गयायाञ्च वृषोत्सर्गात्त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥ ५३ ॥ यत्र तत्र स्थिता देवा ऋषयोऽपि जितेन्द्रियाः। आद्यं गदाधरं ध्यात्वा श्राद्धपिण्डादिदानतः। कुलानां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५४ ॥ गयागजो गयादित्यो गायत्री च गदाधरः। गया गयाशिरश्चैव षड् गया मुक्तिदायिकाः ॥ ५५ ॥ ततो दध्योदनेनैव दद्यान्नैवेद्यमुत्तमं। जनार्द्दनाय देवाय समभ्यर्च्च्य यथाविधि। दद्यान्निक्षिप्य तद्धस्ते तच्छेषेणैव जीवनं ॥ ५६ ॥ गयाख्यानमिदं पुण्यं यः पठेत् सततं नरः। शृणुयात्

स्नान श्राद्धादि करने पितृऋणसे मुक्त होता है। ५२। फल्गुचण्डी श्मशानचण्डी मङ्गलचण्डीकी पूजा करे और गयामें वृषोत्सर्ग करे, तो एक विंशति कुलका उद्धार होता है। ५३। जहां जितने देवता और जहां जितने जितेन्द्रिय मुनि लोग हैं, सबने आगे गदाधरका ध्यानकर और पिण्डदान देकर शतकुलको उद्धार करते हुए पितृलोगोंको ब्रह्मलोकमें ले गये हैं। ४४। गयागज, गयादित्य,गायत्री,गदाधर,गया,गयाशिर,ये छः मोक्ष प्रदान करते हैं।५५। अनन्तर दधि मिश्रित अन्नसे उत्तम नैवेद्यकर यथाविधि जनार्द्दनकी पूजा करे और उनके हाथमें पिण्डनिक्षेप करे।५६

श्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिं॥ ५७॥ पाठयेद्वा गयाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नरः। गयाश्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन न संशयः॥ ५८॥ गयाया महिमानञ्च चर्च्चयेद् यः समाहितः। तेनेष्टं राजसूयेन चाश्वमेधेन नारद॥ ५९॥ लिखित्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकं। तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीः सुप्रसन्ना भविष्यति॥ ६०॥ उपाख्यानमिदं पुण्यं गृहे तिष्ठति पुस्तकं। सर्पाग्नि-चौर-जनितं भयं तत्र न विद्यते॥६१ श्राद्धकाले पठेद्यस्तु गयामाहात्म्यमुत्तमं। विधिहीनन्तु तत् सर्व्वं पितृणान्तु गयासमं॥ ६२॥ यानि

यह पुण्य गयाख्यान जो नर सर्व्वदा पढ़ता और सुनता है, उसकी परम गति होती है। ५७। जो पुण्यवान नर ब्राह्मणसे गयाख्यान पाठ करवाता है, उसका गयाश्राद्ध हो चुका है, इसमें सन्देह नहीं। ५८। हे नारद! जिसने मनोयोगसे गया-माहात्म्य अभ्यास किया, उसका मानो राजसूय और अश्वमेध हो चुका। ५६। जिसने पुस्तक लिखी वा लिखाई उसके, घर लक्ष्मी स्थिरा और प्रसन्ना रहती हैं। ६०। यह पुण्य उपाख्यान-पुस्तक घरमें रहनेसे सर्प अग्नि और चोरका भय नहीं रहता। ६१। श्राद्धसमयमें गयामाहात्म्य पाठ करनेसे श्राद्ध विधि हीन होनेपर भी गया फल लाभ होता है। ६२। हे

तीर्थानि त्रैलोक्ये तानि दृष्टानि तत्र वै। येन स्नातं, गयाख्यानं श्रुतं वा पठितं मुने॥ ६३॥ देवता ऋषय-यस्तुष्टाः पितरस्तस्य नारद। यथादिष्टंतु तत्तस्मै प्रदास्यन्ति मुहुर्मुहुः॥ ६४॥ सूत उवाच। सनत्-कुमारो मुनिपुङ्गवाय, पुण्यां कथाञ्चाय निवेद्य भक्त्या। स्वमाश्रमं पुण्यवनैरुपेतं, विसृज्य सङ्गीतगुरुं जगाम॥६५

इति श्रीवायुपुराणे श्वेतवराहकल्पे गयामाहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नारद! जिसने गयाख्यान पढ़ा वा सुना, उसको त्रिलोकका तीर्थदर्शन हुआ। देवता ऋषि और पितृगण उसपर सन्तुष्ट होकर बार बार उसकी कामनाको पूर्ण करते हैं। ६३—६४। सूत बोले सनत्कुमारने मुनि श्रेष्ठ नारदको यह पुण्यकथा सुनाके, सङ्गीतगुरुको विसर्ज्जन करके, पुण्यवन-युक्त निज आश्रमको गमन किया। ६५।

इति गयामाहात्म्य समाप्त।